(इसी ग्रन्थ के सम्बन्ध में......)

प्रबोधिनी कथा

साधारण लोगों के पढ़ने के लिए ये ग्रन्थ नहीं है, जिनका श्रीचैतन्य देव जी में दृढ़ विश्वास हो गया है तथा जिनकी नामाश्रया भक्ति में श्रद्धा है, वे ही इस ग्रन्थ को पढ़ने या सुनने के अधिकारी हैं। साधन भक्ति में जितने प्रकार की भी साधनाएँ हैं, उनमें एकमात्र नामाश्रया भक्ति से ही सर्वसिद्धि होती है—इस प्रकार जिनका विश्वास है, वे ही सर्वोतम साधक हैं। श्रीमन् महाप्रभुजी की ये शिक्षा उनके शिक्षाष्टक में ही मिलती है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्री हरिदास जी को इस शिक्षा के लिए आचार्य के रूप में वरण किया था।

प्रामाणिक ग्रंथो के अनुसार हरिदास ठाकुर जी का जन्म मुसलमान कुल में बंगाल के वन नामक ग्राम के निकट 'बूड़न' नामक स्थान में हुआ था। अति ही अल्प समय में पूर्व संस्कारों के कारण आपकी हरिभजन में रुचि हो गयी और आप अपने घर को छोड़कर बेनापोल के वन में कुटिया निर्माण कर नाम-संकीर्तन और नाम-स्मरण में अपना समय बिताया करते थे। वहाँ पर कुछ बहिर्मुख व्यक्ति आपके विरुद्ध हो गए, इसीलिए आप उस स्थान का परित्याग करके गंगा जी के किनारे आकर रहने लगे। यहाँ पर एक दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति ने आपका पतन करवाने के लिए एक वेश्या को भेजा। दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति ने जिस वेश्या को उनके अमंगल के लिये भेजा था, वह वेश्या ही सौभाग्य से आपके मुख से हरिनाम सुन-सुन के भक्त बन गई। वेश्या के हरिभक्त बन जाने के बाद आप ने बेनापोल की वह कुटिया उस नयी भक्त(वेश्या) को दे दी तथा स्वयं उस स्थान का त्याग कर दिया।

हरिनाम गाते-गाते आप गंगा के पार सप्त ग्राम में रहने वाले यदुनन्दन आचार्य जी के घर पहुँचे और वहीं रहने लगे। आचार्य जी के साथ आप उस गाँव के जमींदार कहलाने वाले श्री हिरण्य गोवर्धन की सभा में जाते थे। गोपाल चक्रवर्ती नामक एक ब्रह्म बन्धु(अर्थात ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर के भी ब्राह्मण-आचारण से रहित व्यक्ति) के साथ आपका वहाँ हरिनाम की विषय में तर्क हुआ। हिरण्य गोवर्धन ने उस ब्राह्मण को काम से हटा दिया, उसके कुछ समय बाद ही उसको कुष्ठ रोग हो गया। इसी समय में हिरण्य गोवर्धन के पुत्र श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी, जो कि उस समय बहुत छोटी उम्र के थे, ने हरिदास जी की कृपा से वैष्णव-प्रवृत्ति लाभ की थी। गोपाल चक्रवर्ती के क्लेश को सुनकर दुःखी मन से हरिदास ठाकुर जी ने उस स्थान को भी परित्याग कर दिया और श्रीअद्वैताचार्य जी के आश्रम में फुलिया ग्राम में गंगा जी के किनारे पर एक गुफा का निर्माण करके, उस निर्जन स्थान में हरि-भजन करने लगे। भक्त प्रतिष्ठा से जितनी भी घृणा करें और जनसंग का परित्याग करके भजन करें, तो भी भक्ति के प्रभाव से प्रतिष्ठा को किसी प्रकार से छुपाया नहीं जा सकता।

हरिदास जी द्वारा की जाने वाली भक्ति के प्रभाव का प्रचार होने से मुसलमानों की हरिदास जी के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी। मुसलमानों के काजी के द्वारा उनको विशेष रुप से यातना दी गई। हरिदास जी सभी जीवों के ऊपर दया करने में परिपूर्ण हैं वे उनके दोष ग्रहण नहीं करके व उनको आशीर्वाद दे करके अपनी गुफा में लौट आये। इधर कुछ दिनों में महाप्रभु जी का नवद्वीप में अवतार हुआ, श्रीअद्वैताचार्य के साथ मिल के हरिदास जी भी महाप्रभु जी के पदाश्रित हुए। उसी समय से वह महाप्रभु जी के द्वारा नाम-प्रचार के आचार्य रूप से नियुक्त हुए।

तत्पश्चात् जब महाप्रभु पुरी जी धाम में रहने लगे तो हरिदास ठाकुर जी वहाँ आ गये। महाप्रभु जी ने उन्हें सिद्ध बकुल में रखा। हरिदास जी के अप्रकट के समय स्वयं महाप्रभु जी ने उनको समुद्र के तट पर समाधि में

स्थित करके समारोह के साथ संकीर्तन और उनका अप्रकट महोत्सव मनाया।

श्रीमन् महाप्रभु जी की लीला इस प्रकार है कि महाप्रभु जी के जिस भक्त ने भक्ति के जिस विषय में ऊँचा अधिकार प्राप्त किया, महाप्रभु जी ने उस विषय की अपनी शिक्षा उसी भक्त के द्वारा जगत में प्रचार करवायी। यही कारण है कि श्रीमन् महाप्राभु जी ने हरिदास जी से कुछ प्रश्न करके हरि नाम के तत्व को भी उनके ही मुख से प्रकाशित करवाया। श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीचैतन्यभागवत एवं इसी प्रकार के अनेक भक्ति-ग्रंथों में वर्णन है। एक बार मैंने किसी वैष्णव के द्वारा उत्साहित हो करके श्री हरिदास जी द्वारा प्रचारित नाम तत्व को इस ग्रन्थ में संग्रह किया था। इस अलावा यहाँ से काफी दूर रहने वाले किसी भक्त के माध्यम से मुझे नामाचार्य श्री हरिदास जी के सम्बन्ध में कुछ ग्रन्थ भी मिले थे। उन ग्रन्थों में कुछ सहजिया, बाऊल एवं असंलग्न वाक्यों को देखकर बड़ी मेहनत करके मैंने उसमें काँट-छाँट की। उसके बाद उस व्यक्ति से मिले ग्रन्थों में से दो-एक ग्रन्थ ही मुझे शुद्ध वैष्णव मत के अनुकूल लगे।

इस ग्रन्थ में मुझे महामंत्र के 16 नाम व 32 अक्षर का सम्पूर्ण रस-परक अर्थ प्राप्त हुआ, उससे मुझे बहुत खुशी हुई थी। इस ग्रन्थ को देखकर ऐसा लगता है कि हरिदास ठाकुर जी ने अपने किसी शुद्ध-भक्त को हरिनाम की शिक्षा दी थी। नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी से हरिनाम की शिक्षा लेकर उस भक्त ने उन सब शिक्षाओं को लिपिबद्ध किया और उसे छोटे-छोटे ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित किया। मैंने देखा कि जब वे ग्रन्थ प्रकाशित हुए तो श्रीहट्ट(बंगलादेश) के भक्त उस ग्रन्थ को प्रकाशित करने वाले को व उसकी प्रेरणा देने वाले को बड़ा धन्यवाद देने लगे। श्रील हरिदास ठाकुर जी से सम्बन्धित जितनी भी शिक्षाएँ मुझे उन ग्रन्थों में मिलीं, मैंने सारे उपदेशों को इस 'हरिनाम चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में संग्रह किया है।

निष्किंचन भक्तों के सुख की वृद्धि हो, इसी उद्देश्य से हमने ये ग्रन्थ प्रकाशित करवाया है। हरिनाम परायण निष्किंचन वैष्णवों के इलावा और भी कोई इस ग्रन्थ को पढ़ेगा, ऐसा मैं नहीं सोचता हूँ, साथ ही उनके इस सम्बन्ध में वितर्क सुनने की भी हमारी इच्छा नहीं हैं।

भजन-साधन की पद्धतियाँ के अनेक प्रकार की हैं, किन्तु नामाश्रित भजन की पद्धति ये एक ही है। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय से लेकर आज तक महापुरुष लोग नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी द्वारा दी गई इस भजन प्रणाली को अवलम्बन करते आ रहे हैं। ब्रजमण्डल के भी वैष्णव लोग भी प्राचीन काल से इसी भजन-प्रणाली में ही भजन करते रहे हैं। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में कुछ दिन पहले जो भजनानन्दी वैष्णव थे, उन्हें इसी भजन-प्रणाली से भजन करते देखा हैं।

अपराध रहित होकर नि:सग होकर व निरन्तर हरिनाम का कीर्तन और स्मरण ही जो एकमात्र भजन की पद्धति है, इसी को "श्रीहरि भक्ति विलास" नामक ग्रन्थ के अन्त में श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। यह "हरिनाम-चिन्तामणि" पद्य ग्रन्थ है, इससे बालक, स्त्री अथवा जो लोग संस्कृत नहीं जानते, वे भी इस ग्रन्थ को पाठ करके श्रीमन् महाप्रभु जी की शिक्षा पा सकते हैं।

जो लोग संस्कृत नहीं जानते या जो स्त्री व बच्चे हैं, उन्हे पढ़ने में कोई कष्ट न हो इसलिए मैने इस ग्रन्थ में संस्कृत के प्रमाणों को उद्धृत नहीं किया है। हाँ, प्रमाण-माला एक और ग्रन्थ है, जिसमें "हरिनाम-चिन्तामणि" के प्रत्येक वाक्य का शास्त्रीय प्रमाण मिलता है। श्रीकृष्ण की इच्छा होने से वह ग्रन्थ भी शीघ्र ही भक्तों के लिये प्रकाशित होगा।

अकिचंन दास,
श्रीभक्ति विनोद

श्रीगौद्रुम चन्द्राय नमः

श्रीहरिनाम – चिन्तामणि

पहला अध्याय

श्रीनाम माहात्म्य – सूचना

श्रीगदाधर पंडित जी व श्रीगौरांग महाप्रभुजी की जय हो। श्रीमती जाह्नवी देवी जी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभुजी, सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी तथा श्रीवास पंडित आदि जितने भी भक्त हैं, सभी की जय हो।

समुद्र के तट पर नीलाचल धाम के मन्दिर मे पुरुषोत्तम श्रीहरि, दारु ब्रह्म के रूप में अर्थात् दिव्य लकड़ी से बनी श्रीमूर्ति के रूप में जीवों के उद्धार के लिए अवतरित हुए हैं। भगवान श्रीहरि इस रूप में अवतरित होकर सभी को दुनियाँ की धन-सम्पदा व यश आदि तथा मोक्ष प्रदान करते हैं। भगवान के इसी धाम में अर्थात् श्रीजगन्नाथ पुरी धाम में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी, जो कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं, जीवों को भव सागर से पार उतारने के लिए एक संन्यासी के रूप में आये हुए हैं, भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कलियुग के युगधर्म— श्रीहरिनाम संकीर्तन के उपदेश को समझाने के लिए काशी मिश्र के घर पर रहते हैं। यही नहीं, वे अपने भक्तों के साथ बड़े उदार कल्प वृक्ष बनकर सभी को श्रीकृष्ण-प्रेम प्रदान करते हैं।

भक्तों के मुख से हरिकथा सुननी चाहिए, इस महान शिक्षा को देने के लिए आप स्वयं विभिन्न प्रकार के तत्त्वों की कथा बड़े ध्यान से व बड़े आनन्द के साथ सुनते हैं।

आपने श्रीरामानन्दराय जी के मुख से रस-तत्त्व की कथा, भट्टाचार्य जी के मुख से मुक्तितत्त्व की कथा, श्रीरूप गोस्वामी जी के मुख से रस-विचार और श्री हरिदास ठाकुर जी के मुख से हरिनाम की महिमा सुनी थी।

एक दिन भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु समुद्र में स्नान करके सीधे सिद्ध बकुल की ओर चले आये, जहाँ उनकी भेंट श्रीहरिदास ठाकुर जी से हुई। बड़े आनन्द के साथ दोनों मिले। बात करते-करते बड़े सुन्दर ढंग से महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास जी से पूछा— हरिदास जी! ये बताओ कि, किस प्रकार जीव सुगमतापूर्वक भवसागर को पार कर सकता है?

महाप्रभु जी का प्रश्न सुनकर श्रीहरिदास ठाकुर जी के नेत्रों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं और उनका सारा शरीर पुलकायमान को गया। बड़ी श्रद्धा के साथ उन्होंने महाप्रभु जी के चरणों में प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ कर अपनी स्वाभाविक दीनता के साथ आँसु बहाते हुए भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी से कहने लगे—हे प्रभु! आपकी लीला सुगम्भीर है, मैं तो अति अकिंचन हूँ, मेरे पास भला विद्या, धन कहाँ! आपके श्रीचरण ही मेरा सहारा हैं व सर्वस्व हैं। ऐसे अयोग्य व्यक्ति को आपने ऐसे ही यह प्रश्न कर दिया। अब आप ही बतायें कि इसका क्या फल होगा। हे प्रभो! आप तो स्वयं विभु अर्थात सर्वव्यापक श्रीकृष्ण ही हो एंव जीवों का उद्धार करने के लिए आपने नवद्वीप धाम में अवतार लिया है। हे गौरचन्द्र, आप अपने इन लालिमा-युक्त दिव्य-चरणों में कृपा करके मुझे स्थान दीजिए, तभी तो मेरा चित्त प्रफुल्लित होगा। हे गौरहरि

जी! आपके अनन्त नाम हैं आपके गुण भी अनन्त हैं और आपका रूप तो सुखों का सागर है। यही नहीं, आपकी लीलाएँ भी अनन्त हैं। आप मुझ पर कृपा करें, आप अपने श्रीचरणों में मुझे स्थान दें, तभी मेरे जैसा ये पामर जीव आपकी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

हे गौरहरि! आप चिन्मय सूर्य हो, मैं तो उस सूर्य की किरण का एक कणमात्र हूँ। हे गौरहरि! आप मेरे नित्य प्रभु हो और आपका मैं नित्यदास हूँ। आपके चरणों का अमृत ही मेरा आनन्दमय वैभव है। बस, आपके नामामृत का रसास्वादन करने की मेरी बड़ी इच्छा है तथा आशा है कि कभी तो आप अपने नामामृत का मुझे पान करवाओगे। आपने जो प्रश्न किया, उस विषय में मैं भला क्या जानता हूँ, जो कुछ कहूँ। मैं तो बस आपकी आज्ञा का पालन करूँगा और आज्ञा पालन करते हुए आप मेरे मुख से जैसा बुलवाओगे, वैसा ही बड़ी खुशी-खुशी बोलता चला जाऊँगा। बस इतनी कृपा करना कि मेरे द्वारा दिये उत्तर के गुण अथवा दोष न देखना।

कृष्णतत्त्व

इच्छामय भगवान श्रीकृष्ण ही एकमात्र सर्वेश्वर है। वे श्रीकृष्ण नित्य हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वव्यापक हैं तथा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं। श्रीकृष्ण स्वतन्त्र व स्वेच्छामय पुरुष हैं। वे स्वाभाविक रूप से ही अचिन्त्य शक्तियुक्त हैं।

श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण शक्ति

श्री कृष्ण की शक्ति श्रीकृष्ण से कभी भी अलग नहीं है। वेदमन्त्रों में कहा गया है कि जो शक्ति है वे ही श्रीकृष्ण हैं अन्तर केवल इतना है कि श्रीकृष्ण विभु हैं और शक्ति उनका वैभव स्वरूप है। अनन्त वैभव के द्वारा अर्थात् अनन्त शक्तियों से युक्त होकर भी श्रीकृष्ण 'एक' स्वरूप कहे जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण अनन्त शक्ति स्वरूप हैं, इसीलिए उन्हें सर्वशक्तिमान कहा जाता है। शक्ति से श्रीकृष्ण नहीं बल्कि श्रीकृष्ण से अनन्त शक्तियाँ प्रकाशित होती हैं।

तीन प्रकार के वैभव

शक्ति का जो प्रकाश है, उसी का वैभव कहा जाता है। विभु का वैभव ही केवल अनुभव में आता है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे गौरसुन्दर! तुम्हारा वैभव शास्त्र में चिद्-वैभव, अचिद्-वैभव (माया-वैभव) तथा जीव-वैभव— इन तीन रूपों में वर्णित हैं।

चिद्-वैभव

अनन्त बैकुण्ठ इत्यादि जितने भी श्रीकृष्ण के अंसख्य धाम हैं, 'गोविन्द', 'श्रीकृष्ण', 'हरि' आदि जितने भी भगवान के नाम हैं, द्विभुज-वंशीधर, द्विभुज-मुरलीधर, धर्नुधर, चतुर्भुज नारायण इत्यादि जितने भी भगवान के स्वरूप हैं, भक्त-वात्सल्य इत्यादि जितने भी श्रीकृष्ण के मनोहर गुण हैं, वृज में रासलीला, नवद्वीप में नाम संकीर्तन, इस प्रकार जितनी भी श्रीकृष्ण की लीलाएँ हैं— ये सभी भगवान श्रीकृष्ण के अप्राकृत चिद-वैभव हैं। प्राकृत जगत में आने पर भी ये प्राकृत नहीं हैं, ये सभी अप्राकृत हैं या यूँ कहें कि ये उनके चिन्मय-वैभव हैं। श्रीकृष्ण के ये सब चिन्मय धाम, नाम, रूप, गुण व लीला इत्यादि सभी विष्णु-तत्त्व का सार स्वरूप हैं। वेद इन सभी को विष्णुपद कहकर बार-बार इनकी महिमा वर्णन करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण की चिद्-विभूति ही शुद्ध सत्व है

श्रीकृष्ण के चिद्-वैभव स्वरूप— जो श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, धाम, लीला व परिकर आदि है, उनमें दुनियावी माया का विकार नहीं रहता है क्योंकि वह जड़ से परे है। ये विष्णु-तत्त्व, शुद्ध-सत्त्व का सार होता है। इस शुद्ध-सत्त्व में रजोगुण और तमोगुण की कोई गन्ध भी नहीं रहती। ये सभी जानते हैं कि मिश्र-सत्त्व में रजोगुण और तमोगुण मिले होते हैं।

श्रीगोविन्द, श्रीबैकुण्ठनाथ, श्रीनारायण, श्रीकरणोदशायी महाविष्णु, गर्भोदशायी विष्णु, क्षीरोदशायी विष्णु और जितने भी 'स्वांश' नाम से परिचित भगवान के अवतार हैं, वे सभी शुद्ध-सत्त्व-स्वरूप हैं तथा विष्णु-तत्त्व का सार-स्वरूप हैं। यह सब विष्णु-तत्त्व, गोलोक में, बैकुण्ठ में, कारण-समुद्र में अथवा इस जड़-जगत में प्रवेश होने पर भी माया के अधीश्वर रहते हैं। विष्णु नाम ही विभु हैं, ये सभी देवताओं के ईश्वर हैं।

मिश्र-सत्त्व

मायाधीश-प्रभु, शुद्ध सत्त्वमय हैं तथा वे माया के भी ईश्वर हैं जबकि ब्रह्मा, शिव इत्यादि सभी त्रिगुणात्मक देवता हैं, ये सभी मिश्र सत्त्व हैं।

चिद्-वैभव विस्तृति

श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि जितने भी विष्णु-तत्त्व और विष्णु-धाम व लीलाएं हैं। वे सभी आपके चिद्-वैभव हैं।

अचिद-वैभव अथवा माया-तत्त्व

विरजा नदी, जो कि भौतिक-जगत और आध्यात्मिक-जगत की सीमा है, के इस पार चौदहों लोकों में जो कुछ भी है सभी अचिद्-वैभव है। इसे माया का वैभव भी कहते हैं अथवा इन्हें देवी-धाम भी कहा जाता है। इनमें जो कुछ भी बना है, वह आकाश, मिट्टी, जल, वायु तथा अग्नि नामक पंच-महाभूतों एवं मन, बुद्धि व अहंकार से बना है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं— हे जगन्नाथ गौरहरि! भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक नामक ऊपर के लोक तथा अतल-वितल आदि नीचे के सातों लोक आपकी माया के वैभव हैं।

जीव-वैभव

सत्य ये है कि आपका चिद्-वैभव तो अपने-आप में पूर्ण-तत्त्व है, चेतन-तत्त्व है, जबकि माया-वैभव तो इस चिद्-वैभव की छाया है। आकार की दृष्टि से देखा जाये तो ये जीव अति अणु-स्वरूप है परन्तु चिन्मय होने के कारण जीव के गठन में ही स्वतन्त्रता है तथा संख्या में ये जीव अनन्त हैं एवं सुख की प्राप्ति करना ही इन जीवों का लक्ष्य होता है।

मुक्त-जीव

उस नित्य सुख को प्राप्त करने के लिए जिन्होंने आनन्द-स्वरूप श्री कृष्ण की वरण किया, वे तो श्रीकृष्ण के पार्षद बन गये तथा मुक्त जीव के रूप में रहने लगे।

बद्ध और बहिर्मुख – जीव

इनके इलावा जिन जीवों ने अपने सुख की भावना से भगवान के पीछे रहने वाली माया को वरण किया अर्थात् अपने सुख के लिये जिन्होंने माया के भोगों की कामना की वे सभी जीव नित्य काल के लिए श्रीकृष्ण से विमुख को गये और उन्होंने माया के इस देवी-धाम में माया के द्वारा बना शरीर प्राप्त किया। अब येहाँ वे भगवान से विमुख जीव पाप-पुण्य रूपी कर्म के चक्र में पड़कर कर स्थूल व सूक्ष्म शरीर धारण करके इस संसार में भटक रहे हैं। वे कभी स्वर्ग आदि लोकों में तो कभी नरक की प्राप्ति करते हुए चौरासी लाख योनियों का भोगते हुए भटकते रहते हैं।

तब भी श्रीकृष्ण की दया

श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि है प्रभु! मेरा ऐसा विश्वास है कि आप विभु हो और ये जीव आपका ही वैभव हैं। ये आपके नित्य दास हैं। अपने दास के मंगल की चिन्ता करना आपका स्वभाव है। आपके दास अपने सुख की खोज करते हुए आपसे जो कुछ भी माँगते हैं, आप कल्पतरु की भांति अपनी कृपा रूपी बरसात को बरसाते हुए, उसे प्रदान करते रहते हो।

प्राकृत शुभकर्म कर्मकाण्ड

माया के वैभव में फँसकर जीव जब जिस प्रकार का भी अनित्य सुख चाहता है, आपकी कृपा से वह उसे अनायास ही पा लेता है। उसी सुख को प्राप्त करने के लिए ही धर्म-कर्म, यज्ञ, योग, होम व व्रत इत्यादि शुभकर्म बनाये गये हैं। ये सभी शुभकर्म सदा ही जड़मय(प्राकृत) रहते हैं। चिन्मय प्रकृति इन सब से कभी नहीं मिलती। इन शुभ कर्मों को करने से दुनियादी नाशवान फल ही प्राप्त होते हैं। इनसे तो स्वर्ग आदि उच्च लोक तथा सांसारिक भोगों से मिलने वाला सुख ही मिलता हैं। आत्मा की शान्ति इनसे नहीं मिलती। इन सबका प्रयास करना अतिशय भ्रान्तिमय है। इन सब अनित्य उपायों की करने से अनित्य सुख ही मिलते हैं।

इस अवस्था से उद्धार का उपाय

सौभाग्यवश यदि कोई जीव साधु-संग प्राप्त करके यह जान लेता है कि वह भगवान श्रीकृष्ण का दास है तो इस महान ज्ञान को प्राप्त करके वह माया से पार हो जाता है परन्तु ये साधु-संग पूर्वजन्मों की सुकृति के अनुसार ही मिलता है। तुच्छ कर्मकाण्ड में ये सब ज्ञान नहीं बताया गया है।

ज्ञानकाण्ड – ब्रह्मलय सुख

इनकें इलावा जो जीव माया के संसार को यंत्रणामय जानते हैं और इससे बचने के लिए मुक्ति को प्राप्त करने का यत्न करते रहते हैं, ऐसे जीवों को ज्ञानी कहा जाता है। ऐसे लोगों के लिए ही तुमने दयामय होकर ज्ञानकाण्ड नामक ब्रह्मविद्या प्रदान की है। उसी मायावाद रूपी विद्या को आश्रय करके इस संसार से मुक्त होकर जीव ब्रह्म में लय हो जाता है।

ब्रह्म क्या वस्तु है

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं— हे गौरहरि वह ब्रह्म आपके अंगों की कान्ति(चमक) है, जो कि ज्योतिर्मय है। विरजा नदी के उस पार जो ज्योतिर्मय ब्रह्म-धाम है, उसमें बह्मज्ञानी लीन हो जाते हैं। इनके इलावा असुरों का भगवान विष्णु अपने हाथों से संहार करते हैं वे सब असुर भी माया से पार होकर उसी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण – बहिर्मुख जीव

वेसे देखा जाये तो कर्मी और ज्ञानी दोनों ही श्रीकृष्ण से बहिर्मुख हैं। ये जीव कभी भी श्रीकृष्ण की दासता को अर्थात श्रीकृष्ण की सेवा के सुख को आस्वादन प्राप्त नहीं कर सकते।

भक्ति – उन्मुखी सुकृति

कर्मोन्मुखी, ज्ञानोन्मुखी व भक्ति-उन्मुखी— ये तीन प्रकार की सुकृतियाँ होती हैं। इनमें भक्ति उन्मुखी सुकृति ही प्रधान है, जिसके फलस्वरूप जीव साधु-भक्तों की संगति को प्राप्त करता है। श्रद्धावान होकर जब कोई जीव श्रीकृष्ण के भक्तों का संग करता है तब उस जीव की साधु-संग के प्रभाव से हरिनाम में रूचि उत्पन्न हो जाती है तथा साथ ही उसके हृदय में में जीवों के प्रति दया का भाव उमड़ पड़ता है। इस प्रकार साधु-संग के फल से उस श्रद्धावान जीव को भक्ति-पथ की प्राप्ति व इस सुन्दर कल्याणकारी पथ पर चलने का सौभग्य प्राप्त होता है।

कर्मी और ज्ञानी के प्रति कृपा से गौण भक्ति पथ का विधान

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी कहते है कि हे गौरहरि! आप दया के सागर हो और जीवों के ईश्वर हो। कर्मी, ज्ञानी और भगवान के विमुख जीवों के उद्धार के लिए भी आप तत्पर रहते हो। कर्म-मार्ग और ज्ञान मार्ग पर चलने वाले पथिक का भी उद्धार करने के लिए आप यत्न करते हो। उस पथ पथिकों के मंगल की चिन्ता करते हुये आपने एक गौण भक्ति मार्ग भी बना रखा है।

कर्मियों के पक्ष में कर्म का गौण भक्ति मार्ग

अपने-अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण व ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि धर्मों को पालन करते हुए कर्मी व्यक्ति भी भगवान को प्रसन्न करता हैं क्योंकि वर्णाश्रम धर्मों को पालन करने का विधान भी भगवान श्रीहरि ने ही बताया हैं। उपने इन्हीं कार्यों को निष्काम भाव से करने से उसे सुकृति व उसके फलस्वरूप उसे सच्चे साधु का संग प्राप्त होता है। वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले कर्म मार्ग के पथिक का आप हृदय शोधन कर देते हैं जिससे उसके अन्दर पुण्यादि करने की व उसके फल से मिलने वाले स्वर्गादि को प्राप्त करने की प्रवृति खत्म हो जाती है और उस स्थान पर श्रद्धा का बीज आरोपित हो जाता है।

ज्ञानी का गौण भक्ति – पथ

इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान मार्ग पर चलते हुए अपनी सुकृति के प्रभाव से तथा भक्तों की कृपा से अनन्य भक्ति के मार्ग में आ जाता है। साधु-संग के प्रभाव से उस ज्ञानी भक्त की अनन्य भक्ति में अनायास ही श्रद्धा हो जाती है। श्री चैतन्य महाप्रभु जी श्रीहरिदास ठाकुर जी को कहते हैं कि हरिदास, तुम ही तो बोलते हो कि मेरा दास मुझे भूलकर माया की दुर्गति में पड़कर अन्य तुच्छ फलों की आशा करता है परन्तु मैं जानता हूँ कि उसका कैसे सुमंगल होगा। इसलिए मैं उनकी भोग की व मुक्ति की इच्छा छुड़ाकर उनको भक्ति का फल प्रदान करता हूँ।

गौण पथ की प्रक्रिया

हे गौरहरि! आप बड़े दयालु हो। आप जीव की कामना के अनुसार उसे चलाते हुए भी किसी न किसी तरह से गौण भक्ति के मार्ग में उसकी श्रद्धा उत्पन्न करा देते हो। हे प्रभो! आप कृपामय हो, आपकी कृपा के बिना जीव भला कैसे शुद्ध हो सकता है।

कलियुग में गौणपथ की दुर्दशा

सत्ययुग में ध्यानयोग के द्वारा आपने न जाने कितने ऋषियों को शुद्ध करके अपनी भक्ति प्रदान की। त्रेतायुग में यज्ञादि कर्मों के द्वारा अनेक जीवों का शोधन किया तथा द्वापर युग में अर्चन मार्ग के द्वारा बहुत से जीवों को आपने अपनी भक्ति प्रदान की। हे नाथ! कलिकाल के आगमन पर तो जीवों की बड़ी दुर्दशा हो गयी है। अभी देखा जाता है कि कर्म, ज्ञान और योग मार्ग के जीवों की दुर्दशा देखकर असहाय से हो गये हैं, वे जीवों का उद्धार कर पायेंगे ऐसा भरोसा उन्होंने छोड़ दिया है। इतना ही नहीं, हे प्रभु आयु भी बड़ी कम हो गयी है, न जाने कितनी बिमारियों से ये घिरा रहता है, इसका बल व इनकी बुद्धि भी बहुत कम हो गयी है। वर्णाश्रम धर्म, सांख्य, योग, ज्ञान इत्यादि की साधनाएँ कलियुग के जीवों का उद्धार करने में समर्थ नहीं हैं। ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग का जो गौण भक्ति-मार्ग है, वह इतना संकीर्ण है कि उस पर चलना असम्भव सा हो गया है, कहने का तात्पर्य है कि कर्म मार्ग में जो निष्काम भाव से वर्णाश्रम धर्म के पालन वाली बात है उसमें बाधा ये है कि लोगों के अन्दर इतनी विषय-भोगों की लालसा बढ़ गयी है कि वे निष्काम हो ही नहीं पा रहे हैं। ज्ञान-चर्चा की बात जहाँ तक है, वहाँ समस्या ये है कि दुनियाँ में वास्तविक साधु बड़े दुर्लभ हैं, चारों ओर धर्म-ध्वजी कपटी साधुओं का ही बोलबाला है। इन सब समस्याओं को देखकर हे प्रभु! आपने इन सबसे अलग और सर्वोत्तम हरिनाम की साधना बतायी है, क्योंकि हरिनाम में स्वयं भगवान श्रीहरि विराजित रहते हैं। बड़े सौभाग्य से ही ये विशेष हरिनाम तत्त्व समझा जाता हैं

हरिनाम-संकीर्तन ही मुख्य पथ है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर श्रीमन् महाप्रभु जी को कहते हैं कि हे प्रभो! आप जीवों के मंगल की चिन्ता करके ही इस कलियुग में हरिनाम के रूप में स्वय अवतरित हुये हो। आपने ही इस युग के युगधर्म श्रीहरिनाम-संकीर्तन का प्रचार किया है। हे प्रभो! ये मार्ग ही जीवों की आध्यात्मिक साधना का मुख्य पथ है, जिस पर चलकर जीव श्रीकृष्ण-प्रेमरूपी महाधन को प्राप्त कर सकते हैं। नाम स्मरण और नाम संकीर्तन ही इस युग का परम-धर्म व एकमात्र धर्म है इसलिए इस कलियुग में जीव इसी का पालन करेंगे।

साध्य-साधन या उपायउपेय में अभेदता होने पर हरिनाम की ही मुख्यता

जो साधन है, वही अब साध्य भी है, इस उपाय और उपेय के बीच में अब कोई भेद नहीं रहा अर्थात साध्य और साधन के बीच अब कोई अन्तर नहीं रहा— इसलिए अनायास ही जीव आपकी कृपा से भवसागर से तर जाते हैं।

मैं अति अधम हूँ, मैं विषयों में डूबकर बिल्कुल मूढ़ सा बन गया हूँ, यही कारण है कि मैंने आपका भजन नहीं किया। इस प्रकार बोल कर नेत्रों से आँसु बहाते हुये श्रीहरिदास ठाकुर जी लम्बी-लम्बी साँसे लेकर महाप्रभुजी के चरणों में गिर पड़े।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि भगवान के भक्तों की सेवा करना ही जिनका आनन्द है, अर्थात् भगवान के भक्तों की सेवा करने में, जिन्हें आनन्द मिलता है, ये 'हरिनाम-चिन्तामणि' उन्हीं का जीवन स्वरूप हैं।

दूसरा अध्याय

नामग्रहण – विचार

श्री गदाधर पंड़ित, श्री गौरांग महाप्रभु व श्रीजाह्नवी देवी जी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द जी की जय हो। सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि भक्तों की सर्वदा ही जय हो।

हरिनाम करते-करते हरिदास ठाकुर जी हरिनाम के प्रेम में विभोर होकर रो रहे थे। श्रीहरिदास ठाकुर जी को इस प्रकार प्रेम में डूबा देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने हरिदास ठाकुर जी को आलिंगन कर लिया और कहने लगे— हरिदास! तुम्हारे जैसा भक्त मुझे और कहाँ मिलेगा, सचमुच तुम सर्व शास्त्रों के सार को जानने वाले जो तथा तुम हमेशा ही माया से परे हो।

अनन्य भजन की श्रेष्ठता

नीचकुल में आकर तुमने सभी को दिखाया कि धन-दौलत, मान-सम्मान, ऊँचे कुल तथा शालीनता आदि से श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं होती। भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं कि हे हरिदास! वैसे भी अनन्य श्रीकृष्ण भजन में जिसकी प्रगाढ़ श्रद्धा होती है, वह तो देवताओं से भी अधिक श्रेष्ठ है।

श्री हरिदास की नाम – आचार्यता

हरिदास! तुम जानते ही हो कि हरिनाम करना ही सभी शास्त्रों का सार है। आचरण की दृष्टि से आप तो श्रीहरिनाम के आचार्य हो और श्रीहरिनाम के प्रचार में भी तुम परम प्रवीण हो। हरिदास, तुम अपने मुख से हरिनाम की जो अपार महिमा है, उसका वर्णन करो क्योंकि तुम्हारे मुख से श्रीहरिनाम की महिमा सुनकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है।

वैष्णव – लक्षण

जिसके मुख से एकमात्र कृष्ण-नाम का उच्चारण होता है उसे वैष्णव समझना चाहिए। गृहस्थ भक्तों को चाहिए कि वह अति यत्न के साथ इस सिद्धान्त को मानें।

वैष्णवतर के लक्षण

निरन्तर जिनके मुख से कृष्ण-नाम सुनाई पड़ता है अर्थात् जो निरन्तर श्रीकृष्ण-नाम करता रहता है— वह श्रेष्ठ वैष्णव है। ऐसा वैष्णव सभी गुणों की खान होता है।

वैष्णवतम – लक्षण

जिस वैष्णव के दर्शनमात्र से ही मुख से श्रीकृष्ण-नाम उदित हो जाता हो तथा जीव को श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति हो, वही उत्तम वैष्णव(वैष्णवतम) है। भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कहते हैं कि जीव किस रूप से श्रीकृष्ण का नाम करे, इस विधान को तुम मुझे विस्तार से बतलाओ। महाप्रभु जी के यह वचन सुनकर श्रीहरिदास ठाकुर जी प्रेम में गद्‌गद् होकर नेत्रों में आँसु भरकर कहने लगे—

नाम का स्वरूप

श्रीकृष्ण-नाम चिन्तामणि है, अनादि व चिन्मय है। जो श्रीकृष्ण हैं, वही श्री हरिनाम हैं। श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णनाम एक ही तत्त्व हैं। चेतन-विग्रह श्री हरि का नाम नित्यमुक्त तत्त्व हैं। हरि नाम और नामी भगवान भिन्न नहीं है, दोनों ही नित्य शुद्ध तत्त्व हैं। इस जड़-जगत में हरिनाम के अक्षर के आकार में प्रकट हैं। रसिक भक्तों के हृदयों में ये हरिनाम के अक्षर ही रस से भरे शुद्ध-सात्विक अवतार हैं। जैसे किसी भी वस्तु का उसके नाम, रूप, गुण व कर्मों के द्वारा जाना जाता हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण के परिचायक अवतार हैं। श्रीकृष्ण नामक वस्तु चार प्रकार से श्रीकृष्ण के नाम, श्रीकृष्ण के रूप, श्रीकृष्ण के गुण तथा श्रीकृष्ण की लीलायें प्रकाशित हैं। परन्तु हाँ, चूँकि श्रीकृष्ण अनादि है, दिव्य हैं इसलिए उनके नाम, रूप, गुण व लीलायें भी अनादि व दिव्य हैं।

हरिनाम नित्य सिद्ध हैं

भगवान श्रीकृष्ण नित्य वस्तु हैं, आनन्द स्वरूप हैं तथा उनके जैसा और दूसरा कोई नहीं है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि किसी भी वस्तु का परिचय उसके नाम, रूप, गुण तथा कर्म से जाना जाता है। सन्धिनी शक्ति के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण का इन चारों के रूप में दिव्य व नित्य परिचय मिलता है। भगवान के नाम-रूप व गुण आदि हमेशा से ही चिन्मय व नित्य सिद्ध रूप में प्रसिद्ध हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण सारे विश्व को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण-नाम रूपी परम धन में भी यह आकर्षण-धर्म नित्य विराजित है।

श्रीकृष्ण का रूप नित्य है

श्रीकृष्ण का रूप श्रीकृष्ण से सर्वदा अभेद है। उनका नाम और उनका रूप एक ही वस्तु हैं, इसमें कोई भेद नहीं है। श्रीनाम का स्मरण करने के साथ-साथ ही उनका रूप प्रकट होता हैं। श्रीकृष्ण के नाम और श्रीकृष्ण के रूप सर्वदा अभेद होते हैं तथा साधक के हृदय में भगवान के ये नाम व रूप आदि विभिन्न प्रकार से नृत्य करते हैं।

श्रीकृष्ण के गुण भी नित्य हैं।

श्रीकृष्ण के गुण नित्य हैं। श्रीकृष्ण के अनन्त-अपार गुण होने पर भी उनके 64 गुण नित्य हैं। जिनके अपने अंश से तमाम अवतार प्रकट हुये हैं। जिनके गुण-अंश से ब्रह्मा जी व शिवादि ऍश्वर प्रकट हुए हैं, जिनके गुणों के कारण ही श्रीमन् नारायण 60 गुणों के मालिक हैं— ऐसे भगवान श्रीकृष्ण के अपने अनन्त नित्य गुण व अनन्त नित्य नाम हैं तथा ये सभी दुनियावी नहीं, बल्कि माया के गुणों से रहित बैकुण्ठीय हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की लीला भी नित्य हैं।

नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण के गुण रूपी सागर की तरंगों से ही उनकी लीलाओं का विस्तार होता है। विशेष ध्यान देने योग्य बात ये है कि गोलोक में, बैकुण्ठ में अथवा वृज में जोने वाली उनकी सभी लीलायें चिन्मय हैं।

भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला आदि वस्तुएँ भगवान से पृथक नहीं हैं।

भगवान श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण व लीला हमेशा ही श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं तथा इस जगत में भी वे उनसे अभिन्न रहकर ही उदित होती हैं। हाँ, माया के संस्पर्श से बद्धजीव के नाम, रूप, गुण व क्रिया— ये सब जीव से अलग होते हैं। शुद्ध जीव का नाम ये एक ही तत्त्व हैं। जीव का दुनियावी नाम व दुनियावी रूप इत्यादि जीवात्मा से हलग होता है। माया से बनी देह अप्राकृत का देही से भिन्न ज्ञान होना ही विवेक है चूकिं श्रीकृष्ण में माया की गन्ध भी नहीं है, इसलिए श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, व लीला एक ही तत्त्व होते हैं।

हरिनाम ही सभी का मूल है

भगवान के नाम, रूप, गुण व लीला इन चार परिचियों के बीच में उनका नाम सभी का आदि है अर्थात् मूल है। इसलिए हरिनाम करना ही वैष्णवों का एकमात्र धर्म है। हरिनाम करते रहने से उसके अन्दर से ही उनके रूप, गुण और लीला प्रकाशित होती हैं। श्रीकृष्ण की समस्त लीलाएँ नाम में ही विद्यमान हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जी श्रीचैतन्य महाप्रभु को कहते है कि हे गौर हरि! आपका ही ये विधान है कि हरिनाम ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है।

वैष्णव और वैष्णव-प्राय में भेद है

भगवान के उसी सर्वश्रेष्ठ नाम को जो बद्धजीव जब श्रद्धा एंव शुद्ध रूप से करता है तो उसे वैष्णव कहा जाता है। परन्तु जिसका नामाभास हुआ करता है, उसी को वैष्णव प्राय: कहा जाता है। इस प्रकार का वैष्णव-प्राय: व्यक्ति हरिनाम करते-करते धीरे-धीरे शुद्ध वैष्णव बनकर शुद्ध भाव लाभ करता है।

इस मायिक जगत में कृष्णनाम और जीव दोनों चिन्मय वस्तु हैं

श्रीकृष्णनाम के बराबर इस संसार में कोई वस्तु नहीं है। श्रीकृष्ण जी के भंडार में हरिनाम ही परम धन है। इस संसार में जीव और श्रीकृष्णनाम ही चिन्मय वस्तु हैं और बाकी तो सारा संसार ही मायिक जगत है।

मुख्य और गौण रूप से नाम दो प्रकार के हैं।

मुख्य और गौण भेद से श्रीकृष्ण के नाम भी दो प्रकार के हैं। मुख्य नाम के आश्रय से ही जीव सभी वस्तुओं को प्राप्त करता है। भगवान की चिन्मय लीलाओं का आश्रय करके जितने भी श्रीकृष्ण के नाम हैं, सभी भगवान के मुख्य नाम हैं तथा ये नाम ही तमाम गुणों की खान हैं।

मुख्य नाम

गोविन्द, गोपाल, राम, श्रीनन्दनन्दन, राधानाथ, हरि, यशोमति-प्राणधन, मदनमोहन, श्यामसुन्दर, माधव, गोपीनाथ, वृजगोप, राखाल, यादव यह सब नाम नित्यलीला के प्रकाशक हैं। इनके कीर्तन से जीव श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है।

गौण नाम और उनके लक्षण

वेदों के अनुसार जड़ प्रकृति के परिचय और गुणों से सम्बन्धित जितने भी भगवान के नाम हैं, उनको गौण नाम कहते हैं। जैसे— सृष्टिकर्ता, परमात्मा, ब्रह्म, स्थितिकर, जगत-संहार-कर्ता, पालन-कर्ता तथा यज्ञेश्वर हरि आदि।

मुख्य नामों और गौण नामों के फल का भेद

शास्त्रों के मतानुसार कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के भीतर जो नाम आते हैं, से सभी पुण्य और मोक्ष प्रदान करते हैं। हरिनाम का मुख्य फल एकमात्र श्रीकृष्ण-प्रेमधन को प्राप्त करवाना है और ये मुख्य नाम के द्वारा ही यह फल मिलता है, ऐसा साधुगण कहते हैं।

नाम और नामाभास में फल-भेद

शास्त्रों के मतानुसार यदि एक कृष्ण नाम किसी के मुख से निकले अथवा कानों के रास्ते से किसी के अन्दर प्रवेश करे तो वह चाहे शुद्ध वर्ण हों या अशुद्ध वर्ण, हरिनाम के प्रभाव से वह जीव भव सागर से पार हो जाता है। किन्तु इसमें एक बात सुनिश्चित है कि नामाभास होने पर वास्तविक फल की प्राप्ति में विलम्ब होता है। नामाभास होने पर अन्य शुभ फल तो शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं लेकिन प्रेमधन की प्राप्ति में विलम्ब होता है। हरिनाम करने वाले के नामाभास द्वारा जब सारे पाप और अनर्थ खत्म हो जाते हैं तब शुद्ध नाम, भक्त की जिह्वा पर नृत्य करता है। उसी समय शुद्धनाम के प्रभाव से जीव को श्रीकृष्ण-प्रेमधन की प्राप्ति होती है।

हरिनाम में व्यवधान होने से दोष होता है

किन्तु हरिनाम को कोई व्यक्ति भगवान श्रीहरि से अलग समझे तो उससे अपराध होता हैं। तथा इसी अपराध के कारण साधक को भगवद् प्रेम-लाभ में बाधा उत्पन्न होती है। नाम और नामी में भेद बुद्धि होने से ही रुकावट होती है, ऐसी रुकावट रहने पर साधक के हृदय में प्रेम कभी भी उदित नहीं होता।

व्यवधान दो प्रकार का है

वेदों के अनुसार वर्ण व्यवधान और तत्त्व व्यवधान— हरिनाम में ये दो प्रकार के व्यवधान होते हैं। अर्थात शुद्ध हरिनाम में वर्ण और तत्त्व का व्यवधान होने से अर्थात रुकावट होने से जीव के द्वारा शुद्ध हरिनाम नहीं हो पाता।

मायावाद हरिनाम में तत्त्व व्यवधान करता है

श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण नाम में भेद करना ही मायावाद दोष है। शास्त्रों का विचार है कि यह कलि का ही फैलाया हुआ जंजाल है। जबकि वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण के नाम में कोई अन्तर नहीं है।

व्यवधान-रहित नाम ही शुद्ध नाम है

अतएव शुद्ध श्रीकृष्ण नाम जिसके मुख से निकलता है, वही शुद्ध वैष्णव है। ऐसे हरिनाम करने वाले की आदर के साथ सेवा करनी चाहिए।

अनर्थ जितने नष्ट होते हैं अनना ही नामाभास दूर होता है एवं चिन्मय नाम प्रकाशित होता है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि नामाभास छोड़कर शुद्ध नाम को प्राप्त करने के लिए जीव को यत्न के साथ सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए। भजन करते-करते जिस समय सारे अनर्थ नाश हो जाते हैं, उसी समय चित्-स्वरूप श्रीहरिनाम भक्त की जिह्वा पर नृत्य करता है। हरिनाम तो अमृत की धारा है, इसे पान करके उसे छोड़ने का विचार ही नहीं होता। वो तो हरिनाम के आनन्द में मत्त होकर अवश्य ही

नृत्य करने लगता है। श्रीहरिनाम के प्रभाव से जीव तो नाचता ही है, जीव के हृदय में श्रीकृष्ण-प्रेम भी उसके साथ नृत्य करता है। यही नही ऐसा भक्त स्वयं तो नाचता ही है, साथ ही जगत् क लोगों को भी नचाता है और ऐसे में माया तो वहाँ से कोसों दूर चली जाती है।

जिसकी नाम में श्रद्धा होती है उनका ही नाम में अधिकार होता है। हरिनाम में सारी शक्तियाँ हैं

भगवान ने सभी मनुष्यों को हरिनाम करने के लिए अधिकार दिया है। साथ ही भगवान ने हरिनाम में अपनी सारी शक्तियाँ प्रदान कर दी हैं। जिनकी हरिनाम में श्रद्धा होती है, वह ही हरिनाम करने का अधिकारी है। जिसके मुख से श्रीकृष्ण नाम उच्चारित होता है, वह ही आचरणशील वैष्णव है।

हरिनाम में स्थान, समय व अशौच आदि की कोई बाधा नहीं है

हरिनाम में इतनी शक्ति है कि हरिनाम करने वाले को स्थान, समय व अशौच आदि के जितने भी नियम हैं, वे पालन नहीं करने पड़ते क्योंकि हरिनाम इतना प्रभावशाली है कि वह अपवित्रों को भी पवित्र कर देता है।

कलि से ग्रस्त जीवों का नाम में निष्कपट विश्वास होने पर ही उन्हें हरिनाम करने का अधिकार होता है

दान, यज्ञ, स्नान, जप आदि करने में तरह-तरह के विचार हैं। किन्तु श्रीकृष्ण संर्कीर्तन में श्रद्धा करवने वाला का ही एकमात्र उसमें अधिकार है। युगधर्म— हरिनाम का, अनन्य श्रद्धा से जो आश्रय करता है, उस को सभी कुछ प्राप्त होता हैं। हम कलियुग के जीवों के लिए नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि कलियुग के जीव निष्कपट रूप से श्रीकृष्ण के संसार में रहकर हमेशा श्रीकृष्ण नाम ही करेंगे।

हरिनाम के अनुकूल विषय-ग्रहण और प्रतिकूल विषय-वर्जन

भजन के अनुकूल जितने कार्य हैं, उनको स्वीकार करते हुए तथा भजन के प्रतिकूल जितने कार्य हैं, उनको त्याग करते हुये श्रीकृष्ण के संसार में रहकर जो जीवन यात्रा निर्वाह करता है, उसके हृदय में निरन्तर श्रीकृष्णनाम उदित होता है। शुद्ध हरिनाम करने वाला श्रीकृष्ण के संसार में रहकर अपना जीवन निर्वाह करता है और निरन्तर भगवद्-स्मरण के साथ हरिनाम करता रहता है।

अनन्य-बुद्धि के साथ हरिनाम करना

श्रीनामाचार्य हरिदास ठाकुर जी हरिनाम करने वालों को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि हरिनाम करने वाले को चाहिए कि वह हरिनाम के इलावा और कोई धर्म-कर्म न करें। श्रीकृष्ण से स्वतन्त्र भी कोई ईश्वर है, इस भावना से किसी की भी पूजा न करें। बस, कृष्ण नाम और भक्त-सेवा हमेशा करते रहें। ऐसा करने पर श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।

श्रीहरिदास ठाकुर जी रोते हुये महाप्रभु जी के चरणों में गिरकर हरि नाम में अनुराग होने का वरदान माँगने लगे।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर जी के चरणकमलों में जिनका अनुराग है, 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' उनका ही जीवन-स्वरूप है।

तीसरा अध्याय

नामाभास विचार

श्रीगदाधर पंडित, श्रीगौरांग महाप्रभु व जाह्नवी देवी जी के जीवन स्वरूप— श्रीनित्यानन्द जी की जय हो। सीतापति श्री अद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि भक्तों की सर्वदा ही जय हो। हरिदास जी से हरिनाम की महिमा सुनकर महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हो गये और गद्‌गद् होकर उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर जी को अपनी बाहों में उठा लिया और कहने लगे कि हे हरिदास! तुम मेरी बात सुनो। अब आप मुझे "नामाभास क्या है", इसे स्पष्ट रूप से समझाओ क्योंकि नामाभास के बारे में पूरी जानकारी होने से ही जीवों का शुद्ध नाम होगा और तब अनायास ही जीव हरिनाम के गुणों के प्रभाव से भवसागर पार हो जायेंगे।

नामाभास

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हरिनाम रूपी सुर्य उदित होकर मायारूपी अन्ध कार का नाश करता है परन्तु हरिनाम रूपी सूर्य को अज्ञान रूपी ओस व अनर्थ रूपी बादल बार-बार ढ़क देते हैं। जीव के ये अज्ञान और अनर्थ रूपी कोहरा और बादल बड़े घने होते हैं। श्रीकृष्ण नाम रूपी सूर्य जीव के चित्त रूपी आकाश में जैसे ही उदित होता है, उसी समय अज्ञान रूपी कोहरा और अनर्थ रूपी बादल उसे ढक देते हैं।

अज्ञान रूपी कोहरा होता है— स्वरूप-भ्रम

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि जीव हरिनाम के चिन्मय स्वरूप को नहीं जानता है। यही अज्ञानता रूपी कोहरा उसके आगे छा जाता है और जीव के आगे अन्धेरा सा हो जाता है। श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर हैं, जो यह नहीं जानता है, वह ही विभिन्ना देवी-देवताओं की पूजा करता हुआ कर्म-मार्ग में भटकता रहता है। इसके इलावा जीवात्मा का भी चिन्मय स्वरूप है जिसको यह ज्ञान भी नहीं है, वह तो समझो माया के द्वारा बुरी तरह जकड़ा हुआ हर समय अज्ञान में ही रहता है। तभी श्रीहरिदास जी आनन्द से कहने लगे— मैं तो आज धन्य हो गया हूँ क्योंकि आज मेरे मुख से स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु जी हरिनाम महिमा सुनेंगे। हे गौर हरि जी! श्रीकृष्ण प्रभु और जीव उन्हीं श्रीकृष्ण का दास है तथा माया तो जड़ात्मिका है, जो जीव यह नहीं जानता उसके सिर पर अज्ञान रूपी छाया मंडराती रहती है अर्थात् श्रीकृष्ण प्रभु हैं, जीव उनका नित्यदास है तथा माया जड़ है इसे अच्छी तरह से जान लेने पर जीव का सारा अज्ञान खत्म हो जाता है।

बादल रूपी हैं— असद्‌तृष्णा, हृदय की दुर्बलता और अपराध

श्रीकृष्ण नाम रूपी दिव्य सूर्य के सामने असद्-तृष्णा, हृदय की दुर्बलता एंव अपराध आदि के बादल रूपी अनर्थ आकर उसको ढकने लगते हैं। हरिनाम रूपी सुर्य की रोशनी को जब ये अनर्थ रूपी बादल ढक लेते हैं तो जीव का नामाभास होता है। ऐसी अनर्थ-युक्त अवस्था में, स्वतः सिद्ध कृष्ण नाम हमेशा ही ढका रहता है।

नामाभास की अवधि

जितने समय तक सम्बन्ध-तत्त्व का ज्ञान नहीं होता है, उतने समय तक जीव का नामाभास ही होता है। यद्यपि ऐसी अवस्था में भी साधक सद्‌गुरु के आश्रय में ही रहता हैं। परन्तु जब तक वह दृढ़ता पूर्वक भजन

नहीं करता, तब तक उसके ये अनर्थ रूपी बादल नहीं छटते अर्थात् साधक के भजन की निपुणता से ही ये अनर्थ रूपी बादल छिन्न-भिन्न होंगे,

सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन

अज्ञान व अनर्थ रूपी कोहरा व बादलों के हट जाने पर हरिनाम रूपी सूर्य प्रकाशित हो उठता है। ये हरिनाम रूपी सूर्य प्रकाशित होकर भक्तों को श्रीकृष्ण-प्रेम रूपी आनन्द प्रदान करता है। सद्‌गुरु जीव को सम्बन्ध ज्ञान प्रदान करके अभिधेय(साधना) के रूप उससे हरिनाम का अनुशीलन करवाते हैं अर्थात् सद्‌गुरु उसे हरिनाम के श्रवण-कीर्तन व स्मरण के लिए कहते हैं। गुरु जी की कृपा से अल्प समय में ही हरि नाम रूपी सूर्य के तेज से अनर्थ रूपी कोहरा दूर हो जाता है। उसके बाद श्रीहरिनाम जीव को प्रयोजन तत्त्व प्रेमधन प्रदान करते हैं। उस प्रेमधन को प्राप्त करके जीव श्रीकृष्ण नाम-संकीर्तन करता है।

सम्बन्ध ज्ञान

सद्‌गुरु के चरणों में जीव जब श्रद्धा के साथ उपस्थित होता है तो उसे सर्वप्रथम सद्‌गुरु से सम्बन्ध-ज्ञान की प्राप्ति होती है और उसे ये अच्छी तरह से मालूम पड़ जाता है कि, श्रीकृष्ण ही नित्यप्रभु हैं और जीव उनका नित्यदास है तथा ये नित्य सिद्ध श्रीकृष्ण-प्रेम जीव के स्वरूप में प्रकाशित है। जीव श्रीकृष्ण का नित्यदास है, यह भूल कर ही वह माया के जगत में सुख की खोज कर रहा है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते है कि यह मायिक जगत तो जीव का कारागार है। जीव की भगवद्-विमुखता नामक दोष के कारण उसको यह दण्ड देकर शोधन किया जाता है। इस परिस्थिति में यदि जीव साधु-वैष्णवों की कृपा प्राप्त करता है तो वह पुःन सम्बन्ध ज्ञान के द्वारा श्रीकृष्ण नाम प्राप्त करता है तथा हरिनाम करते-करते सभी धर्मों के सार-स्वरूप, श्रीकृष्ण-प्रेमधन को प्राप्त करता है, जिसके सामने सायुज्य, सामीप्य आदि मुक्तियाँ तुच्छ सी प्रतीत होती हैं। जब तक किसी का सम्बन्ध ज्ञान पूरी तरह पक्का नहीं हो जाता, तब तक वह अनर्थो से रहित होकर शुद्ध हरिनाम नहीं कर सकता, ऐसी स्थिति में उसके द्वारा किया गया हरिनाम केवल मात्र नामाभास ही होता है।

नामाभास का फल

नामाभास की स्थिति में भी बहुत मंगल होता है। एक तो जीव की सुकृति प्रबल होती चली जाती है। दूसरा नामाभास से सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं तथा साथ ही मनुष्य के अन्दर भरी हुईं भोगों की वासनाएं हर तरह का छल-कपट व झगड़े की भावनाऐं भी समाप्त हो जाती है। नामाभास के प्रभाव से पतित से पतित जीव भी अपने कुल के साथ पवित्र हो जाता नामाभास से जीव आसानी से मुक्ति का प्राप्त कर लेता है और साथ ही उसके सभी रोगों का निवारण हो जाता है। नामाभास से जीव के अन्दर भरे हुए सभी प्रकार के संदेह नामाभास से समाप्त हो जाते हैं। नामाभासी व्यक्ति सभी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं से मुक्त होकर पूर्ण शान्ति को प्राप्त कर लेता है। नामाभास के प्रभाव से यक्ष, रक्ष, भूत, प्रेत, ग्रह और अनर्थ सब दूर हो जाते हैं। नामाभास के प्रभाव से सभी प्रकार के प्रारब्ध-कर्म समाप्त हो जाते हैं और नामाभास के द्वारा नरकगामी व्यक्ति को भी मुक्ति की प्राप्ति होती है। सभी वेदों को पढ़ने, सभी तीर्थों की यात्रा करने तथा अनेक प्रकार के शुभ कर्मों को करने से भी अधिक है— नामाभास की महिमा अर्थात इन सभी से नामाभास श्रेष्ठ है।

नामाभास से वैकुण्ठादि प्राप्त होता है

नामाभास धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, इन चारों को देने वाला है। इसके अतिरिक्त नामाभास जीव को उद्धार करने की पूर्ण शक्ति रखता है। ये दुनियाँ के तमाम सुखों को देने वाला तथा श्रेष्ठ पद प्रदान कराने वाला है। जिसका किसी तरह से कल्याण नहीं हो सकता, उसका भी नामाभास से कल्याण संभव है। नामाभास की स्थिति को प्राप्त करना अपने आप में ही सर्वश्रेष्ठ पद है। विशेषत: तमाम शास्त्र कहते है कि विशेषत: इस कलियुग में तो नामाभास से ही वैकुण्ठादि की प्राप्ति होती है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि जहाँ तक मुझे ज्ञात है— संकेत, परिहास, स्तोभ, हेला — ये चार प्रकार के नामाभास होते हैं।

संकेत रूपी नामाभास दो प्रकार के होते हैं

पहला तो भगवान विष्णु को लक्ष्य करके दुनियावी बुद्धि से जब भगवान का नाम उच्चारण किया जाता है तथा दूसरा तब, जब भगवान के अतिरिक्त कहीं और ध्यान हो(या चिन्तन हो) और मुख से भगवान का नाम उच्चारण किया जाये संकेत रूपी नामाभास इन्ही दो प्रकार का होता है सांकेतिक नामाभास के सम्बन्ध में अजामिल का उदाहरण शास्त्रों में प्रकाशित है। 'हाराम'! 'हाराम'! उच्चारण से सभी यवन अनायास ही मुक्त हो जायेंगे। अन्यत्र किसी वस्तु को संकेत करते हुये भी यदि भगवद् नाम उच्चारण किया जाता है, तो इस तरह से हरिनाम के उच्चारण में भी हरिनाम का प्रभाव है, वह खत्म नहीं होता।

परिहास नामाभास

जो जीव परिहास(मजाक) करते हुये भी श्रीकृष्ण नाम लेते हैं, जरासन्ध की तरह वे भी इस संसार से पार हो जाते हैं।

स्तोभ नामाभास

शिशुपाल की तरह और किसी उद्देश्य से लिया गया हरिनाम, स्तोभ नामाभास कहलाता है। इससे भी जीव का भवबन्धन दूर हो जाता है।

हेला नामाभास

हरिनाम में अपने मन को न लगाकर सहज भाव से यदि कोई कृष्ण या राम नाम उच्चारण करता है तो इससे उसका हेला नामाभास होता है। ऐसे नामाभास के द्वारा सभी मल्लेच्छ संसार से तर जाते हैं अधिकर विषयी एवं आलसी लोगों के द्वारा यह नामाभास होता है।

अश्रद्धा पूर्वक नाम-ग्रहण और हेला नामाभास में भेद

श्रीहरिदास जी प्रहाप्रभु जी से कहते हैं कि अनर्थयुक्त जीव भी यदि श्रद्धा के साथ कृष्ण नाम करता है तो उसे भी आप श्रद्धापूर्वक लिया गया हरिनाम ही कहते हो। हेला नामाभास तक जितने भी प्रकार के नामाभास हैं, उनमें से किसी भी तरह का नामाभस यदि हो जाता है तो इस प्रकार श्रद्धा-रहित हरिनाम उच्चारण से भी जीवों के तमाम पाप खत्म हो जाते हैं और उनको मुक्ति की प्राप्ति होती है।

अनर्थ समाप्त होने पर नामाभास प्रेम प्रदान कराता है

श्रीकृष्ण-प्रेम को छोड़कर बाकी सब कुछ नामाभास से ही प्राप्त किया जा सकता है और यह नामाभास भी धीरे-धीरे शुद्ध हरिनाम में परिवर्तित हो जाता है। अनर्थों के समाप्त हो जाने जब

साधक के मुख से शुद्ध-नाम होने लगता है तब उसे निश्चित रूप से कृष्ण-प्रेम प्राप्त हो जाता है। नामाभास साक्षात् रूप से प्रेम प्रदान नहीं कर सकता परन्तु इस प्रकार का हरिनाम ही क्रमानुसार प्रेम-मार्ग (कृष्ण-प्रेम) तक पहुँचा देता है।

नामाभास और नाम-अपराध में भेद

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे सर्वेश्वर! प्रभु! जो व्यक्ति नामापराध को छोड़कर नामाभास भी करते हैं, उन्हें भी मैं प्रणाम करता हूँ क्योंकि ये नामाभास कर्म मार्ग व ज्ञान मार्ग से अनन्त गुणा श्रेष्ठ है। श्रीहरिदास जी कहते है कि भगवद्-प्रेम उत्पन्न कराने वाली श्रद्धा यदि किसी के हृदय में शुद्धभाव से विद्यमान हो तो तभी उसके मुख से विशुद्ध श्रीकृष्ण-नाम उच्चारित होगा।

छाया और प्रतिबिम्ब भेद से आभास दो प्रकार का होता है

छाया नामाभास ये आभास दो प्रकार के होते हैं— प्रतिबिम्ब-आभास तथा छाया आभास। हे प्रभु! यह आपकी माया है कि श्रद्धा का आभास भी दो प्रकार से होता है। छाया श्रद्धाभास से छाया नामाभास होता है और इसी से जीव का शुभ उदित होने लगाता है

प्रतिबिम्ब नामाभास अन्य लोगों की भगवान में शुद्ध श्रद्धा को देखकर जो व्यक्ति अपने मन में भी श्रद्धा का आभास लाता है, उसे प्रतिबिम्ब नामाभास कहा जाता है। उस जीव के अन्दर इस श्रद्धा के साथ-साथ दुनियावी भोग तथा मोक्ष आदि की इच्छाएं भी रहती हैं और वह बिना प्रयास के ही अपनी अभीष्ट वस्तु कृष्ण-प्रेम को प्राप्त करने के लिए दिन-रात हरिनाम करता है। यह श्रद्धा का लक्षण मात्र है, इसे वास्तविक श्रद्धा नहीं कहा जा सकता। शास्त्रों में इसे प्रतिबिम्ब श्रद्धाभास कहा गया है। प्रतिबिम्ब श्रद्धाभास की स्थिति में जितनी भी हरिनाम उच्चारित होता है, वह सब प्रतिविम्ब नामाभास ही होता है।

प्रतिविम्ब नामाभास मायावाद रूपी कपटता को उत्पन्न करता है

इस नामाभास में मायावाद रूपी दुष्ट मतों का प्रवेश हो जाये तो यह नामाभास धूर्तता में बदल जाता है।

कपट प्रतिबिम्ब नामाभास ही नामापराध है

नित्य साध्य हरिनाम को सिर्फ साधन समझने से हरिनाम की महिमा को कम आकँना है। यह भी नामापराध है। जो व्यक्ति हरिनाम को सिर्फ साधना समझता है वह बेचारा अपराधों में उलझ कर खत्म हो जाता है। क्योंकि हरिनाम तो साक्षात् हरि है। ये साधना के साथ-साथ साध्य भी है।

छायानामाभास और प्रतिविम्ब नामाभास में भेद

छाया नामाभास में केवल अज्ञान ही होता है, ये अनर्थ हृदय की दुर्बलता से ही होता है। एकमात्र हरिनाम ही ऐसी साधना है जिससे सारे दोष समाप्त हो जाते हैं जबकि प्रतिबिम्ब नामाभास में ये दोष बढ़ जाते हैं।

मायावाद और भक्ति-परस्पर विपरीत-धर्म हैं मायावाद ही अपराध है

मायावादियों के मतानुसार श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण व लीला आदि सभी झूठे तथा नाशवान हैं। इनके मतानुसार भगवद्-प्रेम-तत्त्व नित्य नहीं होता, इसीलिए यह मायावादी-मत शत-प्रतिशत

भक्ति मार्ग के विपरीत है। भक्ति के शत्रु के रूप में मायावाद की गणना होती है, इसीलिए मायावादी भगवद् चरणो में अपराधी होते हैं। मायावादी के मुख से भगवान का नाम नहीं निकलता या यूँ कहें कि उनके मुख से भगवद् नाम निकलने पर भी वह नामत्त्व को प्राप्त नहीं होता। मायावादी यदि भगवान के नाम का उच्चारण भी करता है तो वह मन ही मन में भगवद् नाम को अनित्य समझता है जिससे उसका पतन हो जाता है। हरिनाम करते हुये मन में श्रीहरिनाम से दुनियावी भोगों और मोक्ष की प्रार्थना करना हरिनाम के प्रति धूर्तता है—जिसका परिणाम दुःख है।

अपराध मायावादी को कब छोड़ते हैं

हाँ, यदि मायावादी भोग और मोक्ष की इच्छा को छाड़कर स्वंय को श्रीकृहष्ण का दास समझकर पश्चाताप के साथ हरिनाम करता है तो मायावाद रूपी दुष्ट मत से उसका छुटकारा हो जाता है। इतना ही नहीं, साधु-संग करते हुये जब वह भगवद्-कथा श्रवण एवं कीर्तन करता है तो उसके हृदय में सम्बन्ध ज्ञान का अनुभव उदित होता है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि जब वह सम्बन्ध-ज्ञान के साथ निरन्तर हरिनाम करता रहता है तो उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। वह हरिनाम की कृपा को प्राप्त करता है तथा उसका चित् आत्मबल से परिपूर्ण हो जाता है।

भक्ति का अनित्य बोलने के कारण ही मायावाद रूपी अपराध होता है

श्रीकृष्ण की शक्ति के अंश स्वरूप जीव का, श्रीकृष्ण की सेवा करना ही स्वभाव होता है जबकि मायावादी इसे अनित्य और कल्पित समझते हैं। ऐसे माायावाद की नाम-अपराध के अन्तर्गत गणना होती है। गम्भीरता से देखा जाये तो यह मायावाद तमाम मुसीबतों की खान है।

मायावादी नामाभास के द्वारा मुक्ति का आभास रूपी सायुज्य मुक्ति का प्राप्त करता है

नामाभास कल्पतरू के समान है इसलिए मायावादी को भी उसका अभीष्ट— सायुज्य मुक्ति प्रदान करता है। हरिनाम सर्वशक्तिमान है, इसलिए प्रतिविम्ब नामाभास होने पर भी यह नाम मायावादी को मुक्ति का आभास प्रदान करता है। पाँच प्रकार की मुक्तियों में सायुज्य तो मुक्ति का आभास मात्र है, जिससे केवल संसारी चक्र समाप्त होता है परन्तु भक्त की दृष्टि में उसका यह फल सर्वनाश के समान है क्योंकि सायुज्य मुक्ति का प्राप्त हुआ जीव कभी भी श्रीकृष्ण-प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकता।

मायावादी कभी भी नित्य सुख को प्राप्त नहीं कर पाता

माया से मोहित व्यक्ति उसी को ही अर्थात् सायुज्य-मुक्ति को ही सुख समझता है क्योंकि सायुज्य मुक्ति में सुख का आभास मात्र होता है— वास्तविक सुख नहीं मिलता। वास्तविक मुक्तावस्था तो सच्चिदानन्द भगवान की सेवा की प्राप्ति में है। श्रीकृष्ण-स्मृति के अभाव में सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त होने वाला जीव कभी भी श्रीकृष्ण-सेवा प्राप्त नहीं कर सकता। जहाँ पर भक्ति की नित्यता अथवा कृष्ण-प्रेम की नित्यता में विश्वास नहीं है, वहाँ पर नित्यसुख की प्राप्ति कैसे संभव है।

छाया नामाभास धीरे-धीरे जीव को शुद्ध नाम की ओर ले जाता है— यदि वह दुष्ट मत में प्रवेश न करे तो

चूंकि छाया-नामाभासी व्यक्ति का मायावाद रूपी दुष्ट मत से कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसलिए

मतवादों के चक्कर में पड़कर उसका चिद्बल नष्ट नहीं होता। छाया–नामाभासी व्यक्ति में केवल यह कमी होती है कि वह हरिनाम के वास्तविक प्रभाव को नहीं जानता जबकि हरिनाम का स्वभाव है कि वह अपने आश्रित को अपनी महिमा से अवगत करवा देता है। घने बादलों से ढक जाने के कारण सूर्य का तेज दिखाई नहीं पड़ता परन्तु यदि बादल छिन्न–भिन्न हो जायें तो सूर्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है। वैसे देखा जाये तो छाया नामाभासी व्यक्ति धन्य है क्योंकि सद्गुरु की कृपा से थोड़े ही दिनों में अनायास ही वह भगवद् प्रेम प्राप्त कर लेता है।

भगवद्भक्तों को अवश्य ही मायावादियों के संग का परित्याग करना चाहिए

हरिदास ठाकुर जी कहते हैं— हे महाप्रभु जी! आपकी आज्ञा हैं कि भगवद्भक्तों को मायावादियों का संग सावधानीपूर्वक छोड़ देना चाहिए तथा शुद्ध–नाम परायाण होकर भगवान को प्रसन्न करने की चेष्ठा करते रहना चाहिए। आपकी इस आज्ञा का जो जीव पालन करता है, वही जीव धन्य है। जो अधमजीव आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं करता है, वह चाहे किसी भी प्रकार के साधन करे, उस जीव का करोड़ों जन्मों में भी उद्धार नहीं होगा। हे प्रभु! आप हमें कुसंग से बचाकर अपने चरणकमलों में रखिए, क्योंकि आपकें पादपद्मों की कृपा के अतिरिक्त हमारे कल्याण का और कोई उपाय नहीं है।

श्री भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्री हरिदास ठाकुर जी के पादपद्मों में ही जिन्हें वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है, वे इस 'हरिनाम चिन्तामणि' का हमेशा गुणगान गाते रहते हैं।

चौथा अध्याय

साधु–अपराध— साधुनिन्दा

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते
यतः ख्यातिं यातं कथमुसहतै तद्विगर्हाम।

श्री गदाधर जी के स्वरूप श्री गौरांग महाप्रभु जी की जय हो तथा श्रीमती जाह्वी देवी जी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की जय हो। सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि सभी भक्तों की जय हो।

महाप्रभु जी कहने लगे— 'हरिदास जी! अब तुम नामापराध की विस्तृत व्यारव्या करो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं, हे महाप्रभु! आपकी कृपा से मैं वही बोलूँगा जो आप मुझसे बुलवायेंगे।

दस तरह के नामापराध

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हमारे शास्त्रों में दस प्रकार के नामापराधों का वर्णन है। सचमुच मुझे तो इन नामापराधों से बहुत डर लगता है। हे प्रभु! एक–एक करके मैं सभी अपराधों के बारे में कहूँगा।

बस, आप मुझे ऐसा बल प्रदान करते रहें जैसे मैं इन अपराधों से बचा रहूँ :—

1. भगवान के भक्तों की निन्दा (साधु-निन्दा)।
2. अन्य देवताओं को भगवान से स्वतन्त्र समझना।
3. हरिनाम के तत्त्व को जानने वाले सद्‌गुरु की निन्दा करना।
4. शास्त्रों की निन्दा करना।
5. नाम में अर्थवाद करना अथवा हरिनाम की महिमा को काल्पनिक समझना और ये मानना कि शास्त्रों में हरिनाम की महिमा को व उसके फल को बढ़ा चढ़ाकर बताया गया है।
6. हरिनाम के बल पर पाप करना।
7. अश्रद्धालु व्यक्ति को कृष्ण-नाम का उपदेश देना।
8. अन्य शुभकर्मों को हरिनाम के बराबर कहना घोर अपराध है।
9. दूसरी तरफ ध्यान रखकर हरिनाम करने को हमारे पुराणकर्त्ता 'प्रमाद' कहते है।
10. हरिनाम की महिमा को जानते हुये भी हरिनाम न करना तथा 'मैं' और 'मेरा' की आसक्ति से संसार में लिप्त रहना।

साधु-निन्दा ही प्रथम अपराध है

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मैं समझता हूँ कि साधु-निन्दा ही पहला अपराध है। इस अपराध से जीव का हर प्रकार से ही अकल्याण होता है।

साधु के स्वरूप और तटस्थ लक्षणों का विचार

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! श्रीमद् भागवत के 11 वें अध्याय में आपने श्रीकृष्ण के रूप में उद्धव जी को साधु के लक्षणों के बारे में बताया है। आपने कहा था कि साधु अर्थात् भगवान का भक्त होगा— दयालु, सहनशील, समदर्शी, सत्यवादी, विशुद्धात्मा, हमेशा दूसरों के हित में लगा रहनेवाला, कामना-वासना से जिसकी बुद्धि विचलित न होने वाली, जितेन्द्रिय, अंकिचन, मृदु, पवित्र, भगवान का भक्त उतना ही भोजन करेगा जितनी ज़रूरत है, शान्त मन वाला जिसकी कोई स्पृहा न हो, धैर्यवान, स्थिर, श्रीकृष्ण के शरणागत, विषय-वासनाओं से दूर रहने वाला, गम्भीर, काम-क्रोध आदि से मुक्त, मान-सम्मान की परवाह न करने वाला, सबको सम्मान देने वाला, दूसरों को हरिकथा सुनाने व हरिभजन कराने में निपुण, दूसरों को ना धोखा देने वाला और न ही दूसरों से धोखा खाने वाला तथा ज्ञानीं।

हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि है प्रभु! यह सब लक्षण जिसमें हैं, वही साधु है परन्तु हे प्रभ! स्वरूप-लक्षण और तटस्थ-लक्षण के भेद से, ये सभी लक्षण दो प्रकार के होते हैं जिन पर मैं अब विचार करूँगा।

स्वरूप-लक्षण ही प्रधान लक्षण हैं, इसके आश्रय में तटस्थ लक्षण स्वयं ही उदित हो जाते है।

भगवद्-भक्त के दो प्रकार के लक्षण होते हैं— स्वरूप लक्षण एंव तटस्थ लक्षण। श्रीकृष्ण के शरणागत होना ही साधु का स्वरूप लक्षण होता है जबकि जो अन्य गुण हैं— वे तटस्थ लक्षण हैं। सौभाग्य

से जब किसी को साधु-संग के प्रभाव से श्रीहरिनाम में रूचि होती है, तब वह श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन करता हुया श्रीकृष्ण के पादपद्मों का आश्रय ग्रहण करता है। ये ही साधु का स्वरूप लक्षण है। श्रीनाम-कीर्तन करते-करते, हरिनाम करने वाले के अन्दर अन्य जो गुण आ जाते हैं, उन्हीं को तटस्थ लक्षण कहते हैं जोकि वैष्णव देह में अवश्य ही प्रगट हो जाते हैं।

वर्णाश्रम लिंग और नाना प्रकार के वेश द्वारा साधुत्त्व की पहचान नहीं होती, केवल मात्र श्रीकृष्ण के शरणागत होना ही साधु का लक्षण है—

वर्णाश्रम-चिन्हों से एंव नाना प्रकार के वेशभूषा की रचना से, साधु के लक्षणों की गणना नहीं होती है। श्रीकृष्ण-शरणागति की साधु का लक्षण है और श्रीकृष्ण के शरणागत-भक्त के मुख से ही श्रीकृष्ण नाम का संकीर्तन हो सकता है। गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एंव संन्यासी के भेद से एंव शुद्र, वैश्य, क्षत्रिय एवं ब्राह्मण के प्रभेद से साधुत्त्व का निर्णय कभी भी नहीं किया जा सकता। जो श्रीकृष्ण के शरणागत हैं, वही साधु हैं, यही शास्त्रों का सार सिद्धान्त है।

गृहस्थ— में रहने वाले साधु के लक्षण

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहने लगे— हे प्रभु! आपने श्रीरघुनाथ गोस्वामी को लक्ष्य करके गृहस्थ आश्रम में साधु (भक्त) कैसे रहेंगे, इसकी सार शिक्षा दी है। आपने उस समय श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को कहा था कि वह स्थिर होकर अपने घर जायें एवं पागल न बनें। छलांग मारकर कोई भी भवसागर से पार नहीं होता। भगवद्-भक्ति की साधना में लगे रहें, साधना करते-करते श्रीकृष्ण जी की कृपा से धीरे-ध ीरे जीव भव सागर से पार उतर जाते है। दुनियाँ वालों को दिखाने के लिए बन्दर जैसा दिखावटी वैराग्य दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं, संसार के विषयों के प्रति अनासक्त रहो तथा दुनियाँ में रहने के लिए, गृहस्थ में रहने के लिए जितने विषयों की आवश्यकता हो उतने विषयों को कर्त्तव्य समझकर अनासक्त भाव से स्वीकार करते रहो। हाँ, हृदय में भगवान के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा रखो तथा साथ ही जगत के लोगों से अपने व्यवहार को ठीक रखो, ऐसा करने से बड़ी जल्दी ही श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर तुम्हारा उद्धार कर देंगे।

गृहत्यागी साधु के लक्षण

हे प्रभु! तुमने पुनः श्रीरघुनाथदास जी को वैरागय का रास्ता ग्रहण करने पर, जो शिक्षा प्रदान की थी वह बड़ी अद्भुत थी। आपने कहा था कि ग्राम्य बातें अर्थात् अश्लील बातें न तो सुनना और न ही बोलना। अच्छा खाना व अच्छा पहनना, यह भी वैरागी को शोभा नहीं देता ये भी मत करना। दूसरों के सम्मान देते हुए एंव स्वयं अमानी होकर हमेशा श्रीकृष्णनाम करते रहना तथा मानसिक चिन्तन द्वारा ब्रज में श्रीराधा-कृष्ण जी की सेवा करते रहना।

गृहस्थ और गृहत्यागी के स्वरूप लक्षण एक ही हैं

गृहस्थ और गृहत्यागी— दोनों के लिए, स्वरूप-लक्षण एक ही हैं, किन्तु आश्रम के भेद से, तटस्थ-लक्षण का कुछ अलग विधान है। श्रीकृष्ण की अन्य शरणागति ही भक्त का स्वरूप लक्षण है अर्थात् मुख्य लक्षण है। जिसमें उक्त स्वरूप-लक्षण है, उसमें तटस्थ-लक्षण भी अवश्य होंगे। किन्तु किसी श्रीकृष्ण

के एकान्त शरणागत व्यक्ति में, यदि किसी अंश में तटस्थ-लक्षण पूर्ण उदित न होकर, उसके आचरण में कुछ कमी रह जाये, तब भी वह साधु ही है। श्रीकृष्ण ने यह वाक्य श्रीमद्भागवत एंव श्रीमद्भगवद्गीता में कहे हैं। ऐसे भक्त की यत्न के साथ हमेशा तथा हर प्रकार से पूजा करनी चाहिए। श्रीहरिदास ठाकुर कहने लगे— हे प्रभु! इसमें भी एक रहस्यमय सिद्धान्त है। आपने ही कृपा करके वह समझाया है, अन्यथा ये रहस्य भला मेरी समझ में कैसे आता।

पिछले किये पापों को याद करके जो श्रीकृष्ण के शरणागत साधु की निन्दा करता है वह नामापराधी है

श्रीकृष्णनाम में जब रूचि उदय होती है तब एक हरिनाम से ही पिछले सब किये पाप खत्म हो जाते हैं। हाँ, किसी-किसी के जीवन में देखा जाता है कि उसमें पिछले किये पापों की कुछ गन्ध है अर्थात् अभी गन्दे पापमय थोड़े संस्कार बाकी हैं, परन्तु इसमें घबराने की कोई बात नहीं, श्रीहरिनाम के प्रभाव से पाप की वह गन्ध भी धीरे-धीरे खत्म हो जाती है। तब परम धर्मात्मा रूप से उसका परिचय निखर कर सामने आता है। परन्तु जिन दिनों में वह पाप-गन्ध खत्म हो रही होती है तो साधारण लोगों की नज़रों में वह पाप सा ही लगता है, ऐसे में अथवा शरणागति ग्रहण करने से पहले किये हुये पापों को लक्ष्य करके जो वैष्णव-अवज्ञा करते हैं या वैष्णवों का निरादार करते हैं वे पाखण्ड़ी हैं। वैष्णवों की निन्दा रूपी दोष के कारण वे नाम-अपराधी बन पड़ते हैं। श्रीकृष्ण भी उनसे असन्तुष्ट हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण के प्रति शरणागति ही साधु का लक्षण है, जो अपने को साधु बोलते हैं, वे दाम्भिक हैं—

जो श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं, वे हमेशा, श्रीकृष्णनाम-कीर्तन करते रहते हैं तथा श्रीकृष्ण की कृपा के ऐसे शरणागत व्यक्ति ही साधु कहलाते हैं। श्रीकृष्ण भक्त के अतिरिक्त और कोई साधु नहीं होता तथा जो अपने को साधु कहते हैं, वे धर्मध्वजी तथा घमण्डी हैं, वे तो अपने वेष को दिखाकर अपनी पेट पूजा करते रहते हैं।

कम शब्दों में साधु-निर्णय

जो वास्तविक साधु होता है, भगवद्-भक्त होता है, वह कहता है कि मैं तो हीन हूँ, एकमात्र श्रीकृष्ण की शरण में हूँ एंव जिसके मुख से हर क्षण श्रीकृष्ण नाम ही उच्चारित होता रहता है, वही साधु है वास्तविक भगवद्-भक्त अपने का तृण से भी अधिक हीन समझता है तथा वृक्ष के समान वह सहनशील होता है, स्वयं सम्मान की चाहना न रखकर दूसरों को सम्मान देता है। उसके मुख से उच्चारित श्रीकृष्णनाम ही दूसरों को हृदयों में श्रीकृष्ण-प्रेम को प्रकाशित कर सकता है।

नाम-परायण वैष्णव ही साधु हैं

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते है कि इस प्रकार के अर्थात ऊपर जो कम अक्षरों में साधु के लक्षण बताये गए हैं, ऐसे साधु के मुख से जब मैं एक श्रीकृष्णनाम सुनता हूँ तो मैं उसे वैष्णव समझ कर प्रणाम करता हँ। क्योंकि वैष्णव ही जगद्गुरु हैं और वे ही जगत् के बन्धु हैं। सभी वैष्णव जीवों के लिए कृपा के समुद्र होते हैं। इस प्रकार के वैष्णव की जो निन्दा करते हैं, वे नरक में जाते हैं तथा जन्म-जन्मान्तर के चक्करों में फँसे रहते हैं। वैष्णव-कृपा को छोड़कर भक्ति को प्राप्त करने का और दूसरा कोई उपाय नहीं है। वैष्णव की कृपा से ही सब जीवों का भक्ति की प्राप्ति होती है। वैष्णवों के देह में श्रीकृष्ण-शक्ति रहती है ऐसे वैष्णवों को स्पर्श करने से भी कृष्ण में भक्ति उदित हो जाती है। वैष्णवों की जूठन, वैष्णवों के चरणों

का जल तथा वैष्णवों के चरणों की धूलि— ये तीनों ही भक्ति की साधना में बल प्रदान करने में बड़े प्रभावशाली हैं।

वैष्णव के द्वारा शक्ति संचार

वैष्णव के निकट यदि कुछ समय तक बैठा जाये तो उनके शरीर से श्रीकृष्ण-शक्ति निकलकर श्रद्धावान हृदय को स्पर्श करके उसके शरीर को थोड़ा कंपाकर उसके हृदय में भक्ति उदय करा देती है। जो श्रद्धासहित वैष्णव के निकट बैठते हैं, उनके हृदय में भक्ति उदय होगी। जब किसी के हृदय में भगवद्-भक्ति उदित होगी तो सर्वप्रथम उस जीव के मुख से श्रीकृष्णनाम निकलेगा एंव हरिनाम के प्रभाव से वह तमाम सर्वगुणों का प्राप्त कर लेगा।

वैष्णवों के किस-किस दोष को देखने से वैष्णव निन्दा होती है

माना किसी वैष्णव का जन्म छोटी जाति में हुआ हो और कोई व्यक्ति उसका यह जाति दोष देखे या किसी ने श्रीकृष्ण के चरणों में पूर्ण शरणागति लेने से पहले अगर कोई पाप किया हो और कोई उस पाप को याद करवा कर उस भक्त की निन्दा करे अथवा अचानक किसी वैष्णव से कोई पाप-कर्म हो जाये या कोई वैष्णव ऐसी स्थिति में हो कि पहले पाप करता था परन्तु अब वह शरणागत रहकर भजन करता है परन्तु थोड़े बुरे संस्कार अथी बाकी हैं इनको देखकर ही कोई उसकी निन्दा करे या उसका अपमान करे तो वह अज्ञानी, वैष्णव निन्दक, यमदण्ड का भागी बनता है। वैष्णवों के मुख से ही श्रीकृष्ण-माहात्म्य का प्रचार होता है। ऐसे वैष्णवों की निन्दा को श्रीकृष्ण बिल्कुल भी सहन नहीं करते। दुनियावी भोग दिलाने वाले धर्म-कर्म-यज्ञ अथवा मोक्ष दिलाने वाले ज्ञान-काण्ड को भी छोड़कर जो श्रीकृष्णनाम का भजन करते हैं, वे ही सर्वोपरि हैं।

देवी-देवताओं व शास्त्रों की निन्दा न करके जो हरिनाम का आश्रय लेते हैं, वे ही साधु हैं

शुद्ध-साधुजन, अन्य देवों एंव अन्य शास्त्रों की निन्दा नहीं करते, वे तो एकमात्र श्रीकृष्णनाम का आश्रय लेते हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहने लगे— हे प्रभु! ऐसे हरिनाम का आश्रय लेने वाले साधु चाहे गृहस्थी हों या संन्यासी, उनके चरणों की धूलि को पाने का मैं हमेशा प्रयास करता रहता हूँ। मेरा तो ये अनुभव है कि जिसकी जितनी हरिनाम में रूचि है, वह उतना ही बड़ा वैष्णव है। इसमें वर्णाश्रम, धन, विद्वता, यौवन, रूप, बल व जन आदि कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। इसलिए जिन्होंने हरिनाम का आश्रय लिया है, उन्हें अवश्य ही साधुनिन्दा छोड़नी चाहिए। श्री हरिनाम का आश्रय रूपी शुद्ध-भक्ति का आश्रय लेने वाले भक्त ही शुद्ध-भक्त हैं।

भक्त के द्वारा भक्ति को छोड़ने से वह अभक्त हो जाता है। जहाँ साधुनिन्दा होती है, वहाँ भक्ति नहीं रहती। वह स्थान तो अपराध के स्थान में बदल जाता है। अत: साधकों को चाहिए कि वे साधुनिन्दा को छोड़कर, साधु-भक्त की सेवा करेंगे। भगवान का भक्त हर समय साधुसंग व साधुसेवा करेगा, यही उसका धर्माचरण है, इसी का वह पालन करेगा।

असत् संग दो प्रकार का है

असत्संग का त्याग करना ही वैष्णवों का आचरण होता है। असत् का संग करने से साधु की बड़ी अवहेलना व अवज्ञा होती है। सभी शास्त्रों में असत् दो प्रकार के कहे गये हैं, उन दो में से एक स्त्री संगी

है। स्त्री संगी के संगी का संग करना भी उसी के अन्तर्गत है। उसका संग त्यागने से ही जीवन धन्य हो सकता है।

स्त्री-संगी किसे कहते हैं

श्रीकृष्ण को केन्द्र मानकर गृहस्थ आश्रम में जो दम्पत्ति रहते हैं शास्त्रों में इसे असत्‌संग या स्त्रीसंगी नहीं कहा गया। अधर्म से स्त्री-पुरुष आपस में मिले हों अथवा शास्त्रनुसार अपने वर्ण में अग्नि, पुरोहित, माता-पिता व रिश्तेदारों को साक्षी के रूप में रखकर विवाह करके भी जो व्यक्ति बहुत अधिक स्त्री के पराधीन होता है, शास्त्रों में उसे स्त्री-संगी कहा गया है। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार पुरुष के लिए अवैध स्त्री-संग व स्त्री में बहुत ज्यादा आसक्ति गलत है, उसी प्रकार स्त्री के लिए भी अवैध पुरुष का संग अथवा अपने पति से बहुत ज्यादा आसक्ति गलत है।

एक और प्रकार का असत्-संग होता है वह यह है कि जो श्रीकृष्ण को भक्त नहीं हैं, ऐसे व्यक्तियों का संग। अर्थात जो श्रीकृष्ण के भक्त नहीं हैं ऐसे अभक्त लोगों के संग को भी असत्-संग कहते हैं। ये श्रीकृष्ण-अभक्त संग तीन प्रकार के होते हैं— मायावादी, धर्मध्वजी तथा निरीश्वरवादी व्यक्तियों का संग।*

जो भगवान के नित्यस्वरूप को स्वीकार नहीं करता, जो श्रीकृष्ण की श्रीमूर्ति को माया की, अर्थात् लकड़ी, पत्थर आदि की बनी समझते हैं एंव जीव को भी माया-निर्मित तत्त्व कहते है, उन्हें **मायावादी** कहते हैं। ऐसे लोग जो अन्दर में भक्ति व वैराग्य लेशमात्र भी नहीं है, केवल अपने दुनियावी स्वार्थों को पूरा करने के लिए कपटता सहित साधु का वेश धारण करते हैं, उन्हें **धर्मध्वजी** कहते हैं तथा जो भगवान को न मानने वाले नास्तिक हैं उन्हें **निरीश्वरवादी** कहा जाता है।

इन सबका अर्थात् मायावादी धर्मध्वजी तथा निरीश्वरवादी के संग का त्याग करने को साधु का अपमान या साधु निन्दा नहीं कहते बल्कि जो व्यक्ति इनके संग को त्याग करने को साधु-निन्दा कहता है, उसका संग वर्जनीय है। ऐसे व्यक्तियों के संग का भी परित्याग कर देना चाहिए। असत्-संग छोड़कर जो श्रीकृष्ण की अनन्य भाव से शरण लेकर श्रीकृष्ण नाम करते हैं, वही श्रीकृष्ण-प्रेम-धन को प्राप्त करते हैं।

वैष्णव आभास, प्राकृत-वैष्णव, वैष्णवप्राय और कनिष्ठ-वैष्णव— ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं।

जिनकी साधुसेवा में रूचि नहीं है किन्तु जो लौकिक-श्रद्धा से श्रीमूर्ति का अर्चन करते हैं, ऐसे वैष्णवों को प्राकृत-वैष्णव कहते हैं। ये वैष्णव वास्तविक वैष्णव नहीं होते, हाँ, ये वैष्णवों की तरह ही होते हैं; वैष्णव-आभास कहा जा सकता है— ऐसे वैष्णवों को। यही कारण है कि इनकी गिनती कनिष्ठ वैष्णवों में होती है। ऐसों पर श्रेष्ठ-वैष्णव लोग स्वयं ही कृपा करते हैं।

मध्यम-वैष्णव

श्रीकृष्ण में प्रेम, श्रीकृष्ण-भक्तों से मित्रता, बालिश(अज्ञ) पर कृपा एवं द्वेषी की उपेक्षा, ये चार गुण मध्यम भक्त में होते हैं। मध्यम-भक्त ही शुद्ध भक्त हैं ऐसे भक्त श्रीकृष्ण नाम करने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

उत्तम-वैष्णव

जिन्हें सर्वत्र ही श्रीकृष्ण-दर्शन होता है, जो सभी प्राणियों में श्रीकृष्ण का दर्शन करते हैं, श्रीकृष्ण ही जिनके प्राणधन हैं, जो वैष्णव व अवैष्णव में भेद नहीं देखते, वे ही उत्तम-वैष्णव हैं। श्रीकृष्ण-नाम

ही उनका सार-सर्वस्व होता है।

मध्यम-वैष्णव ही साधु-सेवा करते हैं

इसलिए मध्यम वैष्णव ही हर समय साधु-सेवा में रत रहते हैं।

प्राकृत-वैष्णव नामाभास के अधिकारी हैं

प्राकृत-वैष्णव, जा वैष्णवप्राय: या कनिष्ठ-वैष्णव हैं, वे नामाभास के अधिकारी हैं—शास्त्र ऐसा कहते हैं।

मध्यम-वैष्णव ही नाम के अधिकारी हैं तथा वे ही नामभजन में होने वाले अपराधों पर विचार करते हैं

मध्यम-वैष्णव ही एकमात्र हरिनाम करने के अधिकारी हैं तथा वे ही श्रीनाम-भजन में अपराध का विचार करते हैं। वैष्णव के अपराध की सम्भावना ही नहीं रहती क्योंकि वे सर्वत्र ही श्रीकृष्ण का वैभव देखते हैं। अपने-अपने अधिकारों का विचार करके साधु-निन्दा छोड़नी चाहिए। साधु-संग, साधु-सेवा, श्रीनाम संकीर्तन तथा सभी जीवों पर दया करना ही भक्तों का आचरण है।

साधु-निन्दा होने पर क्या करना चाहिए

असावधानी वश यदि अचानक कभी साधु-निन्दा हो जाये, तब प्रायश्चित के साथ, उस साधु के चरणों को पकड़ लेना चाहिए तथा उनके चरणों में पड़कर रोते-रोते कहना चाहिए— "प्रभो! मेरा अपराध क्षमा करो। हे वैष्णव! इस दुष्ट-निन्दक पर कृपा करो।" साधु बड़े दयालु होते हैं, उनका हृदय बड़ा कोमल होता है। इतना करने मात्र से व तुम्हें क्षमा कर देंगे तथा कृपा पूर्वक तुम्हें आलिंगन कर लेंगे।

भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्री हरिदास ठाकुर जी के पादपद्मों के जो भौंरे हैं, 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' उनका ही जीवन है।

पाचवाँ अध्याय

अन्य देवी देवताओं को श्रीकृष्ण से अलग समझना अपराध है

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं
धिया भिन्न पश्येत् स खलु हरिनामाऽहितकर:।

श्री गदाधर पंडित जी के प्राण श्रीगौराङ्ग. महाप्रभु जी, श्रीमती जाह्नवी देवी जी के जीवन स्वरूपा श्रीनित्यानन्द जी की जय हो। सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि भक्तों की जय हो।

श्रीहरिदास जी हाथ जोड़कर कहने लगे— हे जगन्नाथ! श्री गौर हरि! अब दूसरा अपराध सुनिए।

विष्णुतत्त्व

परम अद्वयज्ञान श्रीविष्णु ही, परमतत्त्व हैं। वे चित्स्वरूप हैं, जगदीश हैं एवं सदा शुद्धसत्त्व स्वरूप हैं। उस पर-तत्त्व के सार हैं अर्थात् गोलोक-विहारी श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं। ये श्रीकृष्ण ही 64 गुणों से अलंकृत एवं सभी रसों के आधार हैं। 60 गुण भगवान श्रीनारायण जी रूप में प्रकाशित है। ये 60 गुण ही श्रीविष्णुजी में सामान्य रूप से विलास करते हैं। पुरुषावतार एवं स्वांश अवतारों में ये 60 गुण उनके कार्यानुसार स्पष्ट रूप से झलकते हैं।

श्रीविष्णु के विभिन्न अंशो का प्रकाश

श्रीविष्णु के विभिन्न अंश दो प्रकार के हैं— साधारण जीव एंव देवता। जीव में भगवान के ही 50 गुण बिन्दु-बिन्दु रूप से विद्यमान हैं जबकि शिव-आदि देवताओं में यह 50 गुण ही कुछ अधिक मात्रा में रहते है। इसके अतिरिक्त इन देवताओं में पांच और गुण आंशिक रूप से विद्यमान होते हैं जो कि पूर्णमात्रा में केवल श्रीविष्णु जी में ही विद्यमान रहते हैं।

60 गुण से श्रीविष्णु-तत्त्व परम ईश्वर हैं

उक्त 55 गुण श्रीविष्णु जी में पूर्ण रूप से विराजमान हैं, ऐसा सर्वशास्त्र में कहते है, इसके अलावा और 5 गुण श्रीविष्णु में पूर्ण रूप से हैं किन्तु शिव आदि देवता एंव जीव में ये गुण नहीं हैं। इन 60 गुणों से ही श्रीविष्णु-तत्त्व सभी ईश्वरों के ईश्वर अर्थात् परम-ईश्वर हैं। अत: शिव आदि अन्य देवी-देवता, भगवान विष्णु जी के दास-दासियाँ हैं। विष्णु जी के विभिन्नांश ये देवता श्रेष्ठत्तर जीव हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान विष्णु जी सभी जीवों के तथा सभी देवताओं के ईश्वर हैं इसलिए उन्हें सर्वजीवेश्वर व सर्वदेवेश्वर कहते हैं।

अज्ञानी व्यक्ति देवी-देवताओं को विष्णु के समान समझते हैं

सचमुच वे बड़े अज्ञानी हैं जो अन्य देवी-देवताओं के साथ श्रीविष्णु को समान मानते हैं। ऐसे मानने वालों का ईश्वर-तत्त्व का ज्ञान नहीं हैं। दस जड़-जगत में श्रीविष्णु ही परम-ईश्वर हैं, शिव आदि देवता सब उनके आधीन व उनके किंकर हैं। कोई कहता है कि माया के तीन गुणों को लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह तीनों ही सविशेष देवता हैं जबकि हमेशा एक सा रहने वाला ब्रह्म तो निर्विशेष होता है।(यह मायावादियों का मत है, जो कि गलत है।)

विभिन्न-वादों के सिद्धान्त

शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार श्रीनारायण ही सर्व-पूज्य हैं, जबकि ब्रह्मा जीव शिवजी तो इस संसार की सृष्टि करने के लिए व प्रलय करने के कार्य के लिए हैं। वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण को छोड़कर जो और-और देवताओं का भजन करते हैं, वे ईश्वर को छोड़कर संसार में ही फंसे रहते है। कोई कहता है कि ये ठीक है कि श्रीविष्णु-तत्त्व ही परतत्त्व हैं, यह वेद-वाणी है; इसे मैं मानता हूँ परन्तु ये सारा विश्व ही विष्णुमय है इसलिए वेद के इस सिद्धान्त के अनुसार सब देवताओं में ही श्रीविष्णु का अधिष्ठान है, अत: सभी देवताओं का अर्चन होने से वह श्रीविष्णु का ही सम्मान होता है। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि उपरोक्त शास्त्र सिद्धान्त है परन्तु ये विधि का सिद्धान्त नहीं है, ये तो निषेध का सिद्धान्त है अर्थात् सारा विश्व विष्णुमय होता है या सभी देवताओं में विष्णु भगवान का अधिष्ठान होता है— इसका मतलब यह नहीं कि किसी भी देवता की पूजा करने से या सब देवताओं की पूजा करने से भगवान विष्णु की पूजा हो जाती है, इस शास्त्र-वाक्य का तात्पर्य है कि भगवान विष्णु की पूजा करने से सभी देवी-देवताओं की पूजा हो जाती है। ठीक उसी प्रकार जैसे वृक्ष की जड़ को सींचने से उसका तना, उसकी शाखाएँ, टहनियाँ व पत्तों आदि का पोषण हो जाता है अर्थात् सभी को पानी मिल जाता है, जबकि पत्तों पर जल डालने से वृक्ष सूख जाता है, उसे पानी नहीं मिलता। इसलिए अन्य देवताओं की पूजा त्यागकर, श्रीविष्णु जी की पूजा करनी चाहिए, इस से अन्य देवताओं की पूजा तो अपने आप जो जाती है। प्राचीन काल से, वेद-सम्मत यह विधि ही चली आ रही थी; किन्तु दुर्भाग्यवश अब कुछ नये मूढ़ व्यक्तियों ने यह विधि छोड़ दी। मायावाद के दोष से व कलियुग के आने से लोग भगवान विष्णु को सभी देवताओं के समान जानकर अन्य देवी-देवताओ की पूजा करने लग

पड़े हैं। एक-एक देवता, एक-एक फल को देने वाला है, किन्तु श्रीविष्णु सर्वफलदाता एवं सबके पालक हैं। सकामी व्यक्ति भी यदि इस तत्त्व को समझ लें तो वे भगवान श्रीविष्णु जी की पूजा करके अपने-अपने फलों को पाते हैं, एवं अन्य देवी-देवताओं की पूजा छोड़ देते हैं।

गृहस्थ-वैष्णवों के कर्त्तव्य

गृहस्थ होकर जो, श्रीविष्णु-भक्त होता है वह संशय त्यागकर हर परिस्थिति में श्रीकृष्ण की पूजा करता है, जन्म से मरने तक जितन भी संस्कार हैं, गृहस्थ व्यक्ति उन सभी में वेद मन्त्रों के अनुसार श्रीकृष्ण की पूजा करेंगे। भगवान विष्णु व वैष्णवों की पूजा का तथा देवी-देवताओं व चित्गणों को श्रीकृष्ण का प्रसाद देने का, वेद में विधान है। मायावादियों के मत के अनुसार जो व्यक्ति पितृश्राद्ध एवं अन्य देवों की पूजा करते हैं, वे अपराधी हैं तथा इस अपराध के कारण उनकी दुर्गति होती है। जैसे विष्णु जी एक ईश्वर हैं, उसी प्रकार शिव जी इत्यादि भी अलग-अलग ईश्वर हैं— विष्णु तत्त्व में इस प्रकार की भेद-बुद्धि करना भी एक प्रकार का भंयकर नामापराध है। भगवान विष्णु की शक्ति पराशक्ति है, इसी से सभी देवी-देवता आये हैं। वेदों के अनुसार भगवान की शक्ति के इलावा और कोई शक्ति नहीं है। शक्ति को शक्तिमान से कभी भी अलग नहीं किया जा सकता, यही वेद का सम्मत है। शिव जल, ब्रह्माजी, गणेश जी तथा सूर्य व अलग-अलग दिशाओं के देवता हमेशा से ही श्रीकृष्ण के द्वारा शक्ति प्रदान करने पर ही कुछ सामर्थ्य रखते हैं। हरिदास जी कहते हैं कि इन्हें ईश्वर कहा जा सकता है परन्तु मैं समझता हूँ कि परमेश्वर एक है तथा जितने भी देवी-देवता हैं, सभी इन्हीं परमेश्वर की शक्ति है। गृहस्थ-भक्त, भक्ति के सदभाव को ग्रहण करेंगे।

वैष्णव लोग किस तरह से वैष्णव-धर्म पालन करेंगे।

भगवान की भक्ति के सद्-भावों में रहकर भगवान की भक्ति की विभिन्न क्रियाओं को करते रहना चाहिए तथा देवताओं व अपने पितरों की प्रसन्नाता के लिए उन्हें भगवान का प्रसाद निवेदन करना चाहिए। बहुत से देवी-देवताओं की पूजा नहीं करनी चाहिए। सभी देवी-देवता भगवान श्रीकृष्ण के दास व दासियाँ हैं, यह जानकर केवल श्रीकृष्ण-भजन ही करते रहना चाहिए और यह भावना हृदय में रखनी चाहिए कि इस कृष्ण-भजन के द्वारा सभी देवी-देवताओं की प्रसन्नता हो रही है। जीव, भगवान श्रीकृष्ण की पूजा व वैष्णवों की सेवा से सर्वसिद्धि प्राप्त कर लेता है, साथ ही इससे साधक का नाम-अपराध भी नहीं होता है व हर समय उसके मुख से श्रीकृष्ण नाम निकलता रहता है या वह हर समय श्रीकृष्ण-नाम गाता रहता है।

चारों वर्णो की जीवनयात्रा की विधि

मनुष्य को चाहिए कि इस संसार में वह अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एंव शूद्र आदि वर्णों, तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, एवं वानप्रस्थादि आश्रमों के नियमों के अनुसार आचरण करे। अपने-अपने वर्ण तथा आश्रम के नियमों को पालन करते हुए अपनी देहयात्रा को चलाना भी सनातन धर्म ही कहलाता है क्योंकि ये क्रियाएँ साधक को सनातन धर्म अर्थात आत्म-धर्म की ओर ले जाती हैं।

अन्त्यज लोगों की जीवन-यात्रा विधि

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों से अलग वर्णसंकर(जहाँ पर स्त्री उच्चवर्ण की व पुरुष निम्न वर्ण का हो, ऐसे विवाह को प्रतिलोग विवाह कहते हैं तथा इस प्रकार के वैवाहिक जीवन से उत्पन्न सन्तान को वर्णसंकर कहते हैं) तथा अन्त्यज जाति के लोग अपनी जीवन यात्रा को चलाने के लिए अपने नीच कार्यों

को छोड़कर शूद्र के नियमों का पालन करेंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि इस संसार में चार वर्णों को छोड़कर अन्य और कोई भी वर्ण नहीं है जिसका कि वे वह पालन कर सकें।

संसारी व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा में अपने–अपने वर्ण के धर्मों का पालन करें

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र अपने वर्ण धर्म का पालन करते हुये शुद्ध श्रीकृष्ण-भक्ति का आचरण करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एंव ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी— ये चारों वर्णाश्रमी अपने आश्रम और वर्ण का पालन करते हुए भी यदि श्रीकृष्ण का भजन नहीं करते हैं, तब उन्हें रौरव नरक में जाना पड़ेगा। गृहस्थ अपने वर्ण-धर्म का आचरण करते हुए जिससे जीवन-यात्रा का निर्वाह हो सके, उतना कमाते हुए श्रीकृष्ण का भजन करेंगे। संसार के विषयों से जब तक किसी का स्वाभाविक वैराग्य न हो जाये तब तक उसे अपने वर्ण व आश्रम के नियमों का आदर तथा पालन करना चाहिए। भक्ति योग में इसी तत्त्व को समझाया गया है। शास्त्रों में कहा गया है कि भक्तियोग ही हमारे हृदय में भगवद्भावों को उदय करवायेगा जिसके द्वारा सांसरिक नियमों के प्रति हमारी प्रवृति स्वाभाविक ही खत्म हो जायेगी अर्थात् हरिभजन करते-करते जब जीव के हृदय में भगवद्-भाव उत्पन्न होने लगते हैं तो उसमे अन्दर सारी भोग प्रवृतियाँ खत्म हो जाती हैं और उसकी देह-यात्रा तो स्वाभाविक रूप से ही चलने लगती है। अपने घर में, स्त्री में व अपने शरीर सम्बन्धीव्यक्तियों में आसक्त वैष्णवों को भक्ति योग रूपी अद्धितीय साधना को करना चाहिए। इस प्रकार की विष्णु-भक्ति के द्वारा ही जीव का संसार के प्रति 'मैं और मेरा' का झूठा भाव समाप्त हो जाता है।

भगवान के नाम और नामी अर्थात् भगवान में कोई अन्तर नहीं होता

भेदबुद्धि के निवारण के लिए एक बात और भी है कि भगवान विष्णु का नाम, उनका रूप, उनके गुण में कोई अन्तर नहीं है, इन्हें श्रीविष्णु से कभी भी पृथक नहीं मानना चाहिए। श्रीविष्णु तत्त्व अपने आप में चिन्मय है, अखंड है तथा विभु है। विष्णु तत्त्व से न तो कोई बड़ा है और न ही कोई उसके बराबर है। अज्ञानता से भी यदि विष्णु के नाम, रूप, गुण आदि में भेदबुद्धि हो जाये अर्थात् कोई भगवान को व उनके नाम आदि को उनसे अलग समझे, तो ऐसे जीव के लिए भगवद्-प्रेम की प्राप्ति अंसभव है। हाँ, ऐसी स्थिति में उसका नामाभास हो सकता है। सद्गुरु की कृपा से यदि उसकी भेदबुद्धि रूपी अनर्थ खत्म हो जाये तो उसके हृदय में शुद्ध नाम प्रकाशित हो जायेगा।

मायावादियों के कुतर्क एंव अपराध

मायावादियों की शिक्षा के प्रभाव से अगर विष्णु और विष्णु के नाम, रूप, गुण आदि में भेद का भाव प्रकट होता है तो इससे श्रीकृष्ण के चरणों में अपराध होता है। ऐसे अपराधों से कभी निवृति नहीं मिलती। मायावादी कहते है— निर्विशेष-निर्विकार-निराकार ब्रह्म ही परतत्त्व है तथा मायावादियों का कहना है कि शून्यवाद ही सत्य है, बाकी सब केवल कुतर्क ही हैं। भगवान के रूप व उनके नाम आदि सब माया में ही कल्पित हैं। अर्थात् अभी जो आप भगवान का स्वरूप देख रहे हो, ये माया से बना है, जैसे ही माया हट जाएगी तो भगवान विष्णु निराकार ब्रह्म बन जाते हैं। परतत्त्व भगवान को सर्वशक्तिमान न मानना अर्थात् परतत्त्व में सर्वशक्ति को ना मानना ही प्रमाद है। जबकि सत्य ये है कि जो शक्तिमान ब्रह्म हैं वही भगवान विष्णु हैं, सिर्फ नाम का ही अन्तर है, यही वेदों का निर्णय है।

विष्णु और ब्रह्म तत्त्व में सम्बन्ध

भगवान विष्णु ही परतत्त्व हैं, एवं सविशेष हैं, किन्तु ज्ञान-मार्गीय साधन से, वे भगवान को निर्विशेष के रूप में अनुभव करते हैं। भगवान की अचिन्तय शक्ति ही विचारों के इस विरोध का नाश करती है तथा अचिन्त्य शक्ति ही विचारों के इस विरोध का नाश करती है तथा साधक के हृदय में भगवान के प्रति एक सुन्दर छवि को स्थापित करती है। जीव की बुद्धि, स्वाभाविक ही अल्पकर है अर्थात् बड़ी मक है इसलिए वह परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति के भाव को ग्रहण करने में असमर्थ रहती है। अपनी बुद्धि से ईश्वर को स्थापन करने की कोशिश खण्डज्ञान होने के कारण ब्रह्मतत्त्व को भी छोटा कर देती है। मायावादी लोग तमाम देवताओं द्वारा आराधित भगवान श्रीविष्णु के परमपद को छोड़कर, एक कल्पित ब्रह्म में उलझकर भ्रमित से हो जाते हैं तथा अपना हित व अहित भी नहीं समझते हाँ, आत्मा के स्वरूपज्ञान को जो समझते हैं अर्थात् जिन्हें अपना चिन्मय स्वरूप का ज्ञान है, वे भगवान के नाम व गुण इत्यादि को भगवान से अभिन्न मानते हैं। यही श्रीकृष्ण स्वरूप का विशुद्ध ज्ञान है, ये विशुद्धज्ञान श्रीकृष्ण से नित्य सम्बन्ध को ज्ञान लेने पर ही हो सकता है और ऐसा होने पर जीव, भगवान की हरिनाम के स्मरण व कीर्तन रूपी भक्ति को करता है।

शिव और विष्णु-तत्त्व में अभेदबुद्धि

जड़ीय अर्थात् दुनियावी नाम, रूप व गुण में जो भेद होता है, चिन्मयतत्त्व में वैसा भेद नहीं है। चिन्मय तत्त्व की यही तो विशेषता है। श्रीविष्णुतत्त्व में भेदज्ञान ही अनर्थ है। शिव आदि देवताओं को भगवान से स्वतन्त्र समझना बिल्कुल गलत है।

भक्त और मायावादी के आचरण

जिन भक्तों ने भगवान श्रीकृष्ण के नाम की शरण ले ली है वे अन्य देवता को छोड़कर एकमात्र श्रीकृष्ण का ही भजन करते हैं। हाँ, वे अन्य देवताओं एंव अन्य शास्त्रों की निन्दा नहीं करते बल्कि वे तो सभी देवताओं को श्रीकृष्ण का दास जानकर उनका आदर करते हैं। गृहस्थ-भक्त भगवान का प्रसाद अपने पितरों व देवी-देवताओं को अर्पण करके उन्हें प्रसन्न करते हैं। वैष्णव लोग जहाँ-जहाँ भी किसी देवी या देवता का दर्शन करते हैं तो वे उन्हें श्रीकृष्ण का दास जानकर प्रणाम करते हैं। मायावादी लोग यदि भगवान की पूजा करते हैं, तो वैष्णव लोग उनका दिया हुआ प्रसाद इस भय से नहीं लेते हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि मायावादी श्रीहरिनाम के चरणों में अपराधी होते हैं और उनके द्वारा की गई पूजा भगवान श्रीहरि ग्रहण नहीं करते हैं। और-और देवी-देवताओं का प्रसाद नहीं लेना चाहिए; देवी-देवताओं का प्रसाद लेने से अपराध होता है, जो कि शुद्धभक्ति की साधना में बाधा पहुँचाता है। भक्त श्रीकृष्ण की पूजा करके उनका प्रसाद और-और देवी-देवताओं को अर्पित करते हैं। देवी-देवताओं को दिया हुआ श्रीकृष्ण का प्रसाद लेने से अपराध नहीं होता तथा इस प्रकार का देवी-देवताओं का प्रसाद लेना हरिभक्ति में बाधक नहीं होता। शुद्धभक्त श्रीनाम के चरणों में अपराधी नहीं होते हैं। वे हरिनाम संकीर्तन करके भगवद्-प्रेम प्राप्त करते हैं तथा हमेशा हरिनाम की जय-जयकार करते रहते हैं।

अपराध की प्रतिक्रिया

प्रमाद से यदि किसी और में विष्णु-ज्ञान हो जाये, तब अनुताप करके, विष्णुतत्त्व का स्मरण करके,

फिर से अपराध न हो जाये, इसके लिए सावधान रहना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण भक्तों के बान्धव हैं, दया के सागर हैं। भगवान श्रीकृष्ण क्षमा के समुद्र हैं इसलिए वे अपने भक्तों के पिछले किये दोषों को क्षमा कर देते हैं। बहुत से देवी-देवताओं की सेवा करने वाले का संग त्याग करना चाहिए तथा अनन्य भाव से एकमात्र भगवान की सेवा करने वाले वैष्णव की सेवा-पूजा करनी चाहिए। श्री भक्तिविनोद ठाकुर जी कहते हैं कि जो लोग नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी के चरणों में शरणागत होंगे, ये हरिनाम चिन्तामणि अनका जीवन स्वरूप होगा।

अध्याय-छठा

गुरु-अवज्ञा

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर पंडित व श्रीवास पंडित पंचतत्त्व की जय हो, श्रीराधा-माधव जी की जय हो। श्रीनवद्वीप धाम, श्री व्रजधाम, श्रीयमुना जी और सभी वैष्णवों की जय हो।

श्री हरिदास ठाकुर निवेदन करते हुये श्रीमन् महाप्रभु से कहने लगे— हे प्रभु! अब मैं अपकी आज्ञानुसार तीसरे अपराध 'गुरु-अवज्ञा' के बारे में विस्तार से कहूँगा कि ये कैसे घटित होता है तथा जीवन में किस प्रकार से गुरु-अवज्ञा होती है।

अनेक योनियों में भ्रमण करने के बाद जीव को ये मनुष्य शरीर मिलता है जो कि अति दुर्लभ एंव मंगल प्रदान करने वाला है। जितनी भी लम्बी अवधि को ये शरीर मिले, परन्तु होता ये अनित्य ही है। मानव-शरीर को धारण करने पर भी जब कोई भजन न करे तो उसे इस मानव देह को त्याग कर फिर से अनित्य ससांर में जन्म लेना और मरना पड़ता है।

संसारी जीव को अवश्य गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए

बुद्धिमान व्यक्ति जन्म-मृत्यु रूपी इस संसार में दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर शान्त स्वभाव के श्रीकृष्ण-भजन का गुरु रूप में आश्रय ग्रहण करता है तथा अपने विनम्र वचनों से उन्हें प्रसन्ना करता है तथा अपने विनम्र वचनों से उन्हें प्रसन्न करता है। भवसागर से पार जाने के लिए सद्‌गुरु रूपी मल्लाह से वह श्रीकृष्ण नाम की दीक्षा पाप्त करके, प्रीतिपूर्वक श्रीकृष्ण का भजन करते हुये भवसागर पार हो जाता है। वैसे तो स्वाभाविक रूप से जीव की श्रीकृष्ण में रति-मति होती है परन्तु ज्यादा तर्क इत्यादि करने से यह प्रीति नष्ट हो जाती है। इसलिए कुतर्क को छोड़कर जब कोई सुमति का आश्रय लेता है तो वह सद्‌गुरु का चरण-आश्रय लेता है तो वह सद्‌गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करते हुये उनसे गुरुमन्त्र प्राप्त करता है। शरीर में आसक्त अथवा विषयों में आसक्ता जीव को चाहिए कि वह अपने-अपने वर्ण एंव आश्रम के नियमों का पालन करते हुये सद्‌गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण करे।

ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण में सत्पात्र होने पर वह गुरु होने के योग्य है

ब्राह्मण यदि श्रीकृष्ण भक्त है तो वह सभी वर्णो का गुरू जो सकता है परन्तु यदि ब्राह्मण कुल में ऐसा सुपात्र न मिले तो अन्य कुल में उत्पन्ना व्यक्ति से भी दीक्षा ग्रहण की जा सकती है। दीक्षा देने या लेने से पहले गुरु को शिष्य की व शिष्य को गुरु की भली भांति परीक्षा कर लेनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, उच्चवर्ण के गुरु से ही दीक्ष लेनी चाहिए।

वर्ण-विचार की अपेक्षा सुपात्र-विचार करना अधिक उचित है

जो कृष्ण- तत्त्व को भली-भांति समझता है, वही वास्तविक गुरु हो सकता है, चाहे वह ब्राह्मण हो, शुद्र हो, गृहस्थी हो अथवा संन्यासी हो। सद्‌गुरु तो तमाम इच्छाओं को पूर्ण करने वाले कल्पतरू के समान होते हैं। यदि हमें श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त करना है तो सद्‌गुरू के वर्ण की ओर अधिक ध्यान न देकर उसकी कृष्ण-भक्ति देखनी चाहिए क्योंकि परमार्थ के मार्ग में केवलमात्र उच्चवर्ण को ही मर्यादा देना उचित नहीं है। शुद्ध सोने की तरह सुपात्र की प्राप्ति करना अर्थात् सद्‌गुरू की प्राप्ति करना ही मूल प्रयोजन है। अगर कोई गुरु, सुपात्र होने के साथ-साथ उच्चवर्ण का भी है, तो यह सोने पर सुहागे के समान है।

गृहत्यागी, गृहत्यागी गुरु का आश्रय कर सकता है

यदि किसी भी कारण वश कोई जीव गृहस्थ- आश्रम का परित्याग करके अन्य आश्रम को ग्रहण करता है तो उसके ऐसा करने मात्र से ही उसे पारमार्थिक उन्नति प्राप्त नहीं होगी। पारमार्थिक उन्नति प्राप्त करने के लिए उसे सद्‌गुरु को आश्रय ग्रहण करना ही पड़ेगा। गृहत्यागी-व्यक्ति को गृहत्यागी गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करना ही उचित है। उनसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करके ही वह श्रीकृष्ण नाम का रसास्वादन कर सकता है।

गृहस्थ-व्यक्ति को अपना गृहस्थाश्रम छोड़ने पर भी अपने पूर्व सद्‌गुरु का चरणाश्रय नहीं छोड़ना चाहिए

गृहस्थ-भक्त को वैराग्य प्राप्त करके संसार छोड़ देने पर भी अपने पूर्व सद्‌गुरु का चरणाश्रय जीवन के अन्तिम क्षणों तक नहीं छोड़ना चाहिए। गृहस्थ व्यक्ति गृहस्थाश्रम के सद्‌गुरु का चरणाश्रय ग्रहण कर सकते हैं यदि वह शुद्ध श्रीकृष्ण भकत हों तो, अन्यथा उसे सुयोग्य त्यागी-सद्‌गुरु के चरणों का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। सद्‌गुरु को प्राप्त करके हरिभजन करते-करते हृदय में जब भगवद् भावों का उदय होता है तो स्वाभाविक रूप से ससांर परित्याग करने से वह वैरागी-भक्त बन जाता है।

जो वैरागय-आश्रम ग्रहण करेंगे, वे वैरागी-सद्‌गुरु का ही चरणाश्रय ग्रहण करेंगे

वैराग्याश्रम ग्रहण कर लेने के बाद उस व्यक्ति हो चाहिए कि वह वैरागी गुरु का ही चरणाश्रय ग्रहण करे क्योंकि वैरागी गुरु के चरणों का आश्रण ग्रहण करने पर उसे वैरागय की शिक्षा प्राप्त होगी। शिक्षा देने के लिए तो गुरु कल्पतरू के समान होते हैं जो कि विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान करते हैं।

दीक्षा और शिक्षा-गुरु समान रूप से सम्माननीय हैं

शिक्षा और दीक्ष्ज्ञज्ञ के भेद से गुरु दो प्रकार के होते हैं। अत: जो व्यक्ति अनायाए उस परमार्थ-धन को प्राप्त करना चाहते हैं, वे शिक्षा गुरु व दीक्षा गुरु, दोनों को बराबर सम्मान प्रदान करते हैं। दीक्षा गुरु श्रीकृष्ण नाम प्रदान करते हैं जबकि शिक्षा गुरु भजन-तत्त्व की शिक्षा देते हैं। सभी वैष्णव, शिक्षा-गुरु होते हैं। उनका यथायोग्य सम्मान करना चाहिए।

सम्प्रदाय के आदिगुरु की शिक्षाओं को अवलम्बन करके आचरण करें

वैष्णव-सम्प्रदाय के सभी आचार्य, शिक्षा गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हैं किन्तु जो आदि-आचार्य हैं, वे गुरु शिरोमणि हैं। उनकी यथोचित पूजा करनी चाहिए। इधर-उधर की बातें न सुनकर आदि-आचार्यों के सुसिद्धान्तों का ही अनुसरण करना चाहिए एंव बड़े यत्न के साथ उनके आदेशों का पालन करना चाहिए तथा इसी वैष्णव-परम्परा से दीक्षा लेनी चाहिए।

वैष्णव-सम्प्रदाय के गुरु का वरण करना ही अनिवार्य है

वैष्णव–सम्प्रदाय के आचार्यों को ही शिक्षा गुरु मानना चाहिए। अन्य–मतों के विद्धानों की शिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए। वैष्णव–सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में सुशिक्षित एंव चरित्रवान ही दीक्षा गुरु होने के योग्य है, ऐसा वैष्णव–विद्धानों का मत है।

मायावादियों से कृष्ण–मन्त्र लेने पर परमार्थ नहीं बनता इसलिए शुद्ध–भक्त को छोड़कर और किसी को भी गुरु मत बनाना

मायावादियों से श्रीकृष्ण–मन्त्र प्राप्त करने पर जीव कभी भी परमार्थ–पथ पर हग्रसर नहीं हो सकता। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण–भक्ति को छोड़कर और–और शिक्षा लेते हैं या शिक्षा देते हैं, दोनो ही नरक में जाते हैं। शुद्धभक्ति को छोड़कर जो अनन्य मतवादों की शिक्षा ग्रहण करते हैं, उनका जीवन यूँ ही तर्क–वितर्क में बीत जाता है। ऐसे तर्क–वितर्क में फंसा जीव भला कैसे गुरु हो सकता है और कैसे जीवों का भला करेगा? जो स्वंय ही सिद्ध नहीं है एंव अमंगलों से घिरा हुआ है, वह दूसरों का क्या मंगल करेगा। अत: जो शुद्ध भक्त है, चाहे वह किसी भी कुल का क्यों न हों, वह गुरु होने के उपयुक्त है, ऐसा सभी शास्त्र कहते हैं।

गुरु–तत्त्व

शिक्षागुरु तथा दीक्षागुरु दोनों ही श्रीकृष्ण के दास हैं। तत्त्व से दोनों ही बृजवासी हैं एंव श्रीकृष्ण की शक्ति के प्रकाश हैं। शिष्यों को चाहिए कि वह अपने गुरुदेव को कभी भी सामान्य जीव न समझें क्योंकि श्रील गुरुदेव श्रीकृष्ण की शक्ति, श्रीकृष्ण के प्रिय एवं शिष्या के लिए तो वे उसके नित्य सेव्य हैं।(शुद्ध–वैष्णवों का ऐसा मत है कि गुरुदेव को साक्षात् श्रीकृष्ण नहीं समझना चाहिए। गुरुदेव को श्रीकृष्ण समझना शास्त्रिय दृष्टि से अनुचित है। इसे मायावादी मत कहते हैं। अत: गुरुदेव को श्रीकृष्ण की शक्ति व श्रीकृष्ण का अति प्रिय जान कर जो शिष्य सदैव उनकी सेवा करता है, वह गुरु–सेवा के प्रभाव से इस संसार से पार हो जाता हैं।

गुरु–पूजा

सबसे पहल गुरु–पूजा करनी चाहिए। उसके पश्चात् श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए। गुरु–पूजा के समय गुरूदेव को श्रीकृष्ण का प्रसाद अर्पण करना चाहिए। अर्थात पूजा के समय तो पहले गुरु–पूजा करें तथा गुरुजी से अनुमति लेकर श्रीराधाा कृष्णजी की पूजा करें। परन्तु भोग लगाते समय पहले भोग भगवान श्रीराध ा कृष्ण जी को अर्पित करें तत्पश्चात् उनका प्रसाद श्रीगुरुदेव जी को अर्पित करें गुरुदेव जी से आज्ञा लेकर बड़े के साथ श्रीकृष्ण की पूजा करें तथा श्रील गुरुदेव को स्मरण करते हुये मुख से भगवद्–नाम का कीर्तन करें।

गुरु के प्रति किस प्रकार की श्रद्धा रखना उचित है

यदि कोई गुरु की अवज्ञा करता है तो उकका अपराध होता है, तब इस प्रकार के अपराध से उसके भक्ति मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। गरु, श्रीकृष्ण तथा वैष्णवों में समबुद्धि करते हुये अर्थात् उनकी पूज्य भाव से सेवा करते हुये जो श्रीहरिनाम का आश्रय ग्रहण करते हैं, वे ही शद्ध–भक्त हैं और वे शीघ्र ही भवसागर से पार हो जाते हैं। जो साधक अपने गुरु में दृढ़ श्रद्धा रखते हैं, वे हरिनाम के प्रभाव से श्रीकृष्ण–प्रेम रूपी महाधन को प्राप्त कर लेते हैं।

कौन सी परिस्थिति में गुरु का अथवा शिष्य का त्याग करना चाहिए

दुर्भाग्यवश यदि कभी ऐसा हो कि गुरु असत् संग में पड़ जाये तो असत् संग के दुष्प्रभाव से उनकी योग्यताएँ खत्म हो जाती हैं। यह ठीक है कि पहले वह एक उच्छे सद्गुरु थे परन्तु बाद में नामापराध के प्रभाव

से उनका ज्ञान नष्ट हो गया। ऐसे में यदि वे वैष्णवों से विद्वेष करके, श्रीहरिनाम रूपी श्रेष्ठ-भजन छोड़कर, धन-दौलत एंव कामिनी के वशीभूत हो जाये तो ऐसे गुरु का त्याग कर देना चाहिए और पुनः श्रीकृष्ण की कृपा से प्रपाप्त सद्गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करते हुये शुद्ध रूप से श्रीहरिनाम करना चाहिए।

इधर सद्गुरु को भी चाहिए कि वह अपने अयोग्य शिष्ण को दण्ड़ दे क्योंकि अयोग्य शिष्य को पालते रहने से वह और अधिक उद्दण्ड हो जाता है। जबकि दूसरी ओर शिष्य को भी चाहिए कि वह अयोग्य गुरु को छोड़ दे अन्यथा योग्य गुरु के पास रहने से शिष्य पारवण्डी बन जाता है। जब तक गुरु व शिष्य दोनों की योग्यता ठीक रहती है, तब तक ही दोनों का आपसी सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए और उस सम्बन्ध का त्याग नहीं करना चाहिए।

परीक्षा के बाद ही सद्गुरु वरण करना चाहिए

शुद्ध-भकत हो ही गुरु रूप में स्वीकार करे जिससे भविष्य में कभी भी गुरु त्याग करने का क्लेश ही न हो । साधक यदि सोच-समझ कर सद्गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करेगा तो उसे भविष्य में संकट में नहीं पड़ना पडेगा। यदि गुरु भक्तिहीन होंगे तो शिष्य भी ऐसे ही होंगे, इसलिए परीक्षा करने के पश्चात् ही साधक किसी को सद्गुरु रूप में स्वीकार करें। सद्गुरु की अवज्ञा करना भयंकर अपराध है। इस अपराध से देवता व मनुष्य सभी नष्ट हो जाते हैं।

गुरु-सेवा की प्रक्रिया

गुरुदेव के विश्राम करने वाला बिस्तर, पदुका, वाहन, चरण रख्ने वाला आसन तथा उनके स्नान जल का कभी भी निरादर नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि उनकी परछाईं को भी नहीं लाघना चाहिए। अपने गुरुदेव के सामने किसी और की अलम से पूजा नहीं करनी चाहिए, न ही किसी को दीक्षा देनी चाहिए। गुरुदइेव के आगे कभी भी अपना बड़प्पन नहीं दिखाना चाहिए। जहाँ कहीं भी गुरुदेव जी का दर्शन हों तो भूमि पर लेट कर उन्हें उण्ड़वत् प्रणाम करके उनकी वन्दना करनी चाहिए। गुरुदेव जी का नाम बहुत ही आदरपूर्वक उच्चारण करना चाहिए। गुरुदेवजी की आज्ञा को कभी भी टालना नहीं चाहिए। गुरु जी को प्रसाद अवश्य ग्रहण करना चाहिए। श्रील गुरुदेव को कभी भी कड़वे वचन नहीं बोलने चाहिएँ। श्रुतियाँ कहती हैं कि अति दीनता के साथ गुरु जी के चरणों में शरणागत होकर उनको प्रसन्न करने वाला आचरण करना चाहिए। इस प्रकार के आचरण के साि श्रीकृष्णनाम संकीर्तन करने से सर्वसिद्धि की अर्थात् भगवानल की प्राप्ति होती है। दुष्ट-संग के प्रभाव से अथवा अप्रमाणिक शास्त्रों को पढ़कर यदि किसी व्यक्ति से श्रीहरिनाम प्रदान करने वाले गुरु का अनादर हो जाये तो उसे चाहिए कि वह उस डुष्ट संग तथा अप्रमाणिक शास्त्रों का त्याग करके अपने गुरु के पादपद!मों में विलाप करते हुये अपने अपराधों के लिए क्षमा प्रार्थना करें। दयालु गुरुदेव कृपा करके उस साधक के अपराधों को क्षमा करके उसे शुद्ध श्रीकृष्ण नाम प्रदान करेंगे।

श्री भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्री हरिदास ठाकुर जी की चरण-रेणु ही जिनका भरोसा है, ऐसा तिनके से भी छोटा, अति तुच्छ जीव 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' का गान करता है।

सातवाँ अध्याय

श्रुति शास्त्र की निन्दा

श्री गदाधर पंडित जी, श्री गौराङ्ग. महाप्रभु जी, श्रीमती जाह्नवा देवी के प्राण-स्वरूप— श्री नित्यानन्द प्रभु जी की जय जो। श्रीसीतापति अद्वैताचार्य जी एंव श्रीवास जी आदि भक्तों की जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी "श्रुति-शास्त्रों की निन्दा" नामक चौथे अपराध के बारे में कहते हैं कि श्रुति-शास्त्रों की निन्दा करने से भक्ति-रस में बाधा उत्पन्न होती है।

वेद ही एकमात्र प्रमाण है

श्रुति-शास्त्र, वेद, उपनिषद्, पुराण— ये सब श्रीकृष्ण के श्वास से उत्पन्न हुये हैं और यह भगवद्-तत्त्व निर्णय में प्रामाणिक हैं। विशेष रूप से अप्राकृत-तत्त्व (भगवद्-तत्त्व) का जितना भी ज्ञान है, सब वेद-सिद्ध है। श्री हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मैं तो हमेशा इसी में रमा रहता हूँ। जड़ातीत वस्तु जड़-इन्द्रियों से दिखाई नहीं दे सकती। श्रीकृष्ण-कृपा के बिना कोई भी उस तत्त्व को नहीं जान सकता। जन्म से ही मनुष्य में करणापाटव, भ्रम, विप्रलिप्सा तथा प्रमाद नामक चार प्रकार के दोष होते हैं।* इन दोषों के कारण मनुष्य अप्राकृत-ज्ञान को नहीं जान पाता जबकि चारों वेद इन दोषों से रहित हैं। अत: वेद के बिना परमार्थ मार्ग में कोई गति नहीं है। माया में फंसे जीवों पर अति कृपा करते हुये भगवान श्रीकृष्ण ने वेद-पुराण आदि का ज्ञान प्रदान किया, जिसे ऋषि-मुनियों ने समाधि लगाकर अनुभव एंव लिपिबद्ध किया।

* 1. करणापपटव— अप्राकृत-तत्त्व को जानने में इन्द्रियों की असमर्थता।
2.भ्रम — गलतफहमी
3.विप्रलिप्सा — दूसरों को धोखा देने की व स्वयं धोखा खाने की प्रवृति।
4.प्रमाद — असावधानता

वेदों में से मुख्य दस मूल शिक्षा और नौ प्रमेय

श्रुति-शास्त्रों के माध्यम से हम यह जानते हैं कि कर्म और ज्ञान जीव के वास्तविक उद्देश्य को पूरा नहीं करते, केवल मात्र निर्मल भक्ति ही जीव को उसके जवन का वास्तविक कद्‍ेश्य प्रदान करती है। माया से मोहित जीव कर्म तथा तुच्छ ज्ञान के चक्कर में उलझे रहते हैं। भगवान श्रीहरि ने कृपा करके जीवों को कर्म और ज्ञान से ऊपर उठाकर शुद्ध-भक्ति का अधिकार एंव उसकी शिक्षा प्रदान की क्योंकि शुद्ध भक्ति से ही श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति होती है। भगवान कहते हैं कि वेद तथा नौ प्रमेय इसके प्रमाण हैं। वेद, जीव को सम्बन्ध, अभिधय तथा प्रयोजन तत्त्व की ही शिक्षा देते हैं। यह दस मूल शिक्षा* ही तमाम उपदेशों का सार है। इस दशमूल शिक्षा से अविज्ञा का विनाश होता है तथा ये दशमूल शिक्षा जीव के हृदय में सुविध
ा
(आध्यात्मिक विद्या) का प्रकाश करती है।

* मूल दस तत्त्व—
(क) वेद-वाक्य ही एकमात्र प्रमाण हैं।
(1) श्रीहरि ही परमतत्त्व हैं।
(2) भगवान श्रीहरि सर्वशक्तिमान हैं। वे श्याम सुन्दर हैं।
(3) भगवान श्याम सुन्दर जी परम रसमय हैं।
(4) जीव संख्या में अनन्त हैं, सभी चेतन-परमाणु हैं तथा नित्य बद्ध और नित्य मुक्त की दृष्टि से जीव दो प्रकार के होते है परन्तु सभी जीव होते श्रीकृष्ण के विभिन्न अशं हैं।

(5) श्रीकृष्ण से विमुख जीव माया-बद्ध होते हैं।
(6) जबकि शुद्ध भक्त लोग माया से मुक्त होते हैं।
(7) सभी जीव और ये सारा जड़ जगत भगवान की अचिन्त्य शक्ति से प्रकट हुआ है जिनका भगवान से अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है।
(8) श्रीकृष्ण की नवधा-भक्ति ही जीवों का अभिधेय अर्थात् जीवों की साधना है।
(9) श्रीकृष्ण-प्रेम ही जीवों की साधना का प्रयोजन है।

श्री हरि ही एकमात्र परतत्त्त हैं, सर्वशक्तिमान हैं तथा रस-मूर्ति हैं

सबसे पहली शिक्षा यह है कि परम तत्त्व एक है और वे श्रीहरि हैं। श्रीकृष्ण, सर्वशक्तिमान एंव आनन्द की घनीभूत मूर्ति हैं। श्रीकृष्ण अपने धाम में नित्य विराजित रहते हैं तथा जीवों को परमानन्द प्रदान करते हैं। वेद-शास्त्र जीवों के हृदय में प्रकाशित होकर श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में इन्हीं तीन प्रमेयों की शिक्षा देते हैं।

जीव-तत्त्व

जीव तत्त्व के सम्बन्ध में अगली शिक्षा यह है कि जीव भगवान की शक्ति के विभिन्न अंश हैं तथा संख्या में अनन्त हैं। यह जीव कोई जड़ीय वस्तु नहीं है बल्कि ये जीव तो चेतन का एक परमाणु-कण है।

नित्यबद्ध तथा नित्यमुक्त के भेद से जीव दो प्रकार के होते हैं

नित्य-बद्ध तथा नित्य-मुक्त के भेद से जीव दो प्रकार के होते हैं। इस पूरे ब्रह्माण्ड में जहाँ-तहाँ जीव भरे पड़े हैं। श्रीकृष्ण के विमुख मायाबद्ध-जीव अनन्त ब्रह्माण्डों में दुख-सुख का भोग करते रहते हैं, जबकि नित्य-मुक्त जीव बैकुण्ठ में श्रीकृष्ण का भजन करते हुये श्रीकृष्ण के पार्षद के रूप में भगवद्-प्रेम सम्पदा का रसास्वादन करते हैं। जीवों के विषय में श्रुति-शास्त्र इन तीन प्रमेयों की श्रीकृष्ण की दासी के रूप में शिक्षा प्रदान करती हैं।

अचिन्तय भेदाभेद सम्बन्ध

श्रुति-शास्त्र कहते हैं कि चिद् तथा अचित्-जगत अर्थात् जीव तथा तमाम जड़ वस्तुएँ श्रीकृष्ण की शक्ति से उत्पन्न हुई हैं वे ये सभी श्रीकृष्णशक्तिमय हैं इन सभी का श्रीकृष्ण को अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है। अचिन्त्य भेदाभेद ज्ञान के द्वारा ही जीव को यह मालूम पड़ता है कि वह श्रीकृष्ण का नित्य-दास है तथा श्रीकृष्ण ही उसके अपने नित्य-प्रभु हैं और वह श्रीकृष्ण रूपी चिन्माय सूर्य की किरणों का एक छोटा सा परमाणु मात्र है। शक्ति-परिणामवाद ही वेद-शास्त्रों का मत है। विवर्तवाद अर्थात् एक वस्तु में दूसरी वस्तु का भ्रम होने का नाम विवर्त है जोकि नितान्त वेद-विरुद्ध है।

यहाँ तक जिन सात प्रमेयों को बताया गया है, सभी सम्बन्ध ज्ञान से सम्बन्धित हैं। सभी श्रुति-शास्त्र इनके बारे में अति कल्याणकारी उपदेश प्रदान करते हैं। सम्बन्ध-ज्ञान के बाद वेद अभिधेय-ज्ञान की शिक्षा देते हैं, जो कि चिन्मय नवधा कृष्ण-भक्ति तथा नागानुगा-भक्ति है।

अभिधेय-नवधा भक्ति

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वंदन, पादसेवन्, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन् इस नवधा भक्ति में

श्रीनाम संकीर्तन ही सर्वशिरोमणि है। वेदों में भी भगवान के नाम प्रणव (ॐ) की विशेष महिमा गाई गई है।

प्रयोजन – कृष्ण प्रेम

मानव शुद्ध-भक्ति का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण-कृपा के प्रभाव से भगवद्-प्रेम प्राप्त करता है।

इस प्रकार की शिक्षा देने वाले
श्रुति – शास्त्रों की निन्दा करना अपराध है

यह नौ प्रमेय वेदों में वर्णित होने के कारण पूर्ण रूप से प्रमाणिक हैं। सद्गुरु इन नौ प्रमेयों को भली-भांति समझते हैं तथा अपने शिष्यों को समझाते हैं। इस प्रकार के श्रुति-शास्त्रों की जो निन्दा करता है वह जीव नामाराधी तथा नराधम(अधम जीव) है।

वेद विरुद्ध वाद

जैमिनी, कपिल, नगन, नास्तिक, सुगत तथा गौतम ये छः व्यक्ति हेतुवाद से ग्रस्त हैं। जैमिनी, मुख से वेदों को तो मानते हैं परन्तु ईश्वर को नहीं मानते। उनका कहना है कि कर्मकाण्ड ही श्रेष्ठ है। कपिल की कल्पना में ई श्वर असिद्ध है, काल्पनिक है परन्तु फिर भी उन्होंनं जिए योगमार्ग की शिक्षा दी है, उसका तात्पर्य क्या है, समझ में ही नहीं आता। नग्न ने तामस-तन्त्र का विस्तार करके वेद-विरुद्ध धर्म का प्रचार किया। नास्तिक चार्वाक तो कभी भी वेद को नहीं मानते। सुगत जो बौद्धधर्म कापालन करते हैं, वे हलग ही तरह की व्याख्या करते हैं। न्याय दर्शन के रचयिता गौतम, भगवान को नहीं मानते। इनके हेतुवाद में मनुष्य उलझे हुये हैं। विद्वान भगवद्-भजन जानते हैं कि इन सब दुष्ट मतवादों के द्वारा कभी स्पष्ट रूप से तो कभी अस्पष्ट रूप से श्रुति-शास्त्रों की निन्दा होती रही है। इन सब मतों में पड़ने से अपराध निश्चित है, इसलिए दृढ़ता के साथ इन मतवादों से दूर रहना चाहिए।

मायावाद अति ही दुष्ट एंव वेद – विरुद्ध मत है

ऊपर लिखे मतवादों को तथा मायावाद को छोड़ने से ही मानव र्निविवाद रूप से शुद्ध-भक्ति रस का आस्वादन कर सकता है। मायावाद असत्-शास्त्र है और एक तरह का गुप्त बौद्ध-मत है। इसमें वेदों के अर्थ की विकृति की गई है परन्तु यह कलिकाल में प्रसिद्ध है।

श्रीहरिदास ठाकुर जी श्रीमन् महाप्रभु जी से कहते है— हे प्रभु! आपकी आज्ञा से ही उमापति महादेव जी ने ब्राह्मण रूप में आकर इस मायावाद को प्रकाशित किया तथा मायावाद के आचार्य बने। जैमिनी ने जिस प्रकार सिर्फ मुख से वेद को मानते हुये श्रुति-शास्त्र के परिवर्तित अर्थो की व्याख्या की थी, उसी प्रकार मायावादी गुरुओं ने प्रच्छन्न (ढ़के हुए) बौद्ध धर्म को वेदवाक्यों के द्वारा स्थापित करके भगवद्-भक्ति के असली मर्म को ही ढक दिया। इन सब मतावादों को स्वीकार करने से जीव भक्ति से दूर हो जाती है तथा उसका श्रीकृष्ण नाम के प्रति अपराध हो जाता है।

वेदों के विचारानुसार शुद्ध प्रक्रिया

वेदों की अभिधावृति(मुख्य अर्थ) को ग्रहण करने से जीव को शुद्ध-भक्ति की प्राप्ति होती है जिससे वह श्रीकृष्ण रूपी प्रेम-धन से धनी हो जाता है किन्तु वेद-वाक्यों में अनुचित रूप से लक्षणावृति(घुमा फिरा कर किया हुआ अर्थ) का प्रयोग करने से नित्य-सत्य से जीव दूर रहता है और अपराध में ही फंसता चला जाता है। प्रणव(ॐ) श्रीकृष्ण नाम सभी वेदों द्वारा सम्मत है अर्थात् सभी वेदों की राय है महावाक्य प्रणव(ॐ) ही श्रीकृष्णनाम है। उस श्रीकृष्ण नाम को करने से भक्तजन आनन्दमय बैकुण्ठ-गोलोकध

म को प्राप्त करते हैं। वेदों में कहते हैं कि इस जगत् में भगवान का नाम ही चिद्स्वरूप है, जिसके आभास मात्र से सब प्रकार की सिद्धि हो जाती है।

वेद केवल शुद्ध–नाम–भजन की ही शिक्षा देते हैं

दुर्भाग्यशाली व्यक्ति ही वेद की इन शिक्षाओं को न मान कर, वेद की निन्दा करते हुये नामापराध करते हैं किन्तु जो शुद्ध नाम-परायण भगवद्-भक्त लोग हैं, वे वेदों का आश्रय लेकर नाम-रस रूपी प्रमध न को प्राप्त करते हैं। सभी वेद कहते हैं कि श्रीहरिनाम ही सार है, उसका कीर्तन करो। ऐसा करने से आपकी भगवान में प्रगाढ़ प्रीति होगी तथा तुम्हें असीम आनन्द का अनुभव होगा। यही नही, वेद और भी कहते हैं कि जितने भी संसार से मुक्त महाजन हैं, वे बैकुण्ठ धाम में सदा-सर्वदा श्रीहरिनाम संकीर्तन करते रहते हैं।

तामस–तन्त्रों की शिक्षा वेद विरुद्ध है

कलियुग के तथाकथित महाजन लोग चिन्मय-पुरुष-श्रीकृष्ण के नाम-रस को त्याग कर माया-शक्ति का भजन करते हैं। वे तामसिक-तन्त्रों को प्रमाणिक मानकर वेदों की निन्दा करते हैं। वे शराब व मांस का सेवन करते हुये अधर्म का आचरण करते हैं । इस प्रकार के निन्दक, श्रीकृष्ण नाम को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकतेक और न ही कभी उन्हें श्रीकृष्ण के श्रीवृन्दावन धाम की प्राप्ति होती है।

मायादेवी की निष्कपट कृपा ही हमारा प्रयोजन है

इस प्रकार पाखंड आचरण करने वाले व्यक्ति को मायादेवी अधोगति प्रदान करती है एंव भगवद् नाम में उनकी मति नहीं होने देती किन्तु यदि साधक की साधु-सेवा की निष्कपट भावना द्वारा मायादेवी अर्थात् दुर्गादेवी प्रसन्न हो जाती हैं तो वे भी निष्कपट भाव से उसको श्रीकृष्ण के पाद-पद्मों की छाया प्रदान करती हैं। मायादेवी श्रीकृष्ण की दासी हैं। वह
श्रीकृष्ण से विमुख जीवों को दण्ड देती हैं। मायादेवी अपनी पूजा से इतना प्रसन्न नहीं होतीं जितना श्रीकृष्ण की पूजा से प्रसन्न होती हैं। जो श्रीकृष्ण का नाम उच्चारण करते हैं, मायादेवी उन पर निष्कपट कृपा करते हुये उन्हें भवसागर से पारा ले जाती हैं। अत: श्रुति-शास्त्र की निन्दारूपी अपराध को छोड़कर श्रीनाम-संकीर्तन रस में मग्न रहना चाहिए।

इस अपराध से मुक्त होने का उपाय

असावधानीवश यदि श्रुति-शास्त्र की निन्दा हो जाये तो पश्चाताप् करते हुये श्रुति-शास्त्रों की वन्दना करली चाहिए तथा उन श्रुति-शास्त्रों को श्रीमद्भागवत् के साथ रखकर उनको पुष्प एंव तुलसी अर्पण करते हुए बड़े यत्न के साथ उनकी पूजा करनी चाहिए क्योंकि श्रीमद्भागवत सभी वेदों का सार है तथा ये साक्षात् श्रीकृष्ण का अवतार है। ये भावना रखनी चाहिए कि भगवान श्रीकृष्ण को ये श्रीमद्भागवत-अवतार अवश्य ही मुझ पर करूणा बरसायेंगे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों की रज ही जिनका भरोसा है, श्रीहरिनाम चिन्तामणि उनके गले का हार है।

आठवा अध्याय

हरिनाम में अर्थवाद

श्री गौर-गदाधर तथा श्रीश्री राधा माधव जी की जय हो। श्रीमन्महाप्रभु जी की सभी लीला-स्थलियों की जय हो, गंगा जी की एंव वैष्णवों की सर्वदा जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे शचीनन्दन! हे गौरहरि! श्रीहरिनाम में अर्थवाद की कल्पना

अर्थात् शास्त्रों में हरिनाम की महिमा बढ़ा-चढ़ा कर लिखी गई है, ऐसा मानना आठवाँ अपराध है।

नाम – महिमा

स्मृति-शास्त्र कहते हैं कि श्रद्धा से अथवा अनायास ही यदि कोई श्रीकृष्ण नाम लेता है तो दयालु श्रीकृष्ण दया-परवश होकर उस पर कृपा करते हैं। श्रीहरिनाम के समान कोई भी निर्मल-ज्ञान नहीं है। श्रीहरिनाम करने के समान और कोई भी प्रबल व्रत नहीं है। इस जगत् में श्रीहरिनाम के समान कोई भी ध्यान नहीं है। श्रीहरिनाम के समान कोई श्रेष्ठ फल नहीं है। श्रीहरिनाम के समान कोई भी त्याग नहीं है। उस संसार में श्रीहरिनाम के समान कोई पुण्य नहीं है। हरिनाम के बराबर तो कुछ भी नहीं है। विचार करने से मालूम पड़ेगा कि श्रीहरिनाम के समान गति किसी भी साधन में नहीं है। अतः श्रीहरिनाम ही परम-मुक्ति है। श्री हरिनाम ही श्रेष्ठ नाम हैं। श्रीहरिनाम से ही उच्चतम गति की प्राप्ति होती है। श्रीहरिनाम ही परम शांति स्वरूप हैं। श्रीहरिनाम ही उच्चतम स्थिति है। श्रीहरिनाम करना ही सर्वश्रेष्छ भक्ति है। श्रीहरिनाम से ही शुद्ध मति होती है। श्रीहरिनाम से ही श्रीकृष्ण में परम प्रीति से ही है। श्रीहरिनाम ही श्रेष्ठतम स्मृति हैं। श्रीहरिनाम ही कारण तत्त्व हैं। श्रीहरिनाम ही सब के प्रभु हैं। श्रीहरिनाम ही परमाराध्य हैं तथा श्रीहरिनाम ही सब गुरुओं में से श्रेष्ठतम् गुरु हैं।

श्रीकृष्ण नाम की सर्वोत्तमता

एक हज़ार विष्णु-नाम के बराबर एक राम नाम होता है, जबकि तीन राम नाम के बराबर एक कृष्ण नाम होता है।

नाम में अर्थवाद करने से अवश्य ही नरक-गति होती है

श्रुति-शास्त्र हमेशा ही श्रीहरिनाम की महिमा गान करते रहते हैं तथा जगतवासियों को बताते हैं कि भगवद्नाम चिन्मयतत्त्व है। श्रुति व स्मृति शास्त्रों के द्वारा प्रदर्शित हरिनाम की महिमा को पाषण्डी लोग अर्थवाद कहते हैं। उनका कहना है कि ये महिमा तो बढ़ा-चढ़ा कर लिखी गयी है। जो अधम जीव श्रीहरिनाम में अर्थवाद करते हैं, वह पापी नरक में सड़-सड़ कर मरते हैं। श्रीहरिनाम का जो महिमाफल श्रुति-शास्त्रो में वर्णित है, वह सत्य नहीं है, केवल मात्र श्रीहरिनाम में रुचि उत्पन्न कराने के लिए इतना फल कहा गया है—ऐसा जो कहते हैं, वह शास्त्रों के सही तात्पर्य को नहीं जानते हैं तथा वह अधम जीव यह भी नहीं जानते कि जीव को मंगल या अमंगल किस बात में है। वह तो अपने दिमाग से हर बात का अर्थ अल्प ही सोचते हैं।

श्रीहरिनाम का फल सत्य है

कर्मकाण्ड में जैसी कपटता व स्वार्थबुद्धि भरी पड़ी है, वह भक्तितत्त्व में अर्थात् श्रीहरिनाम में नहीं है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मेरा ऐसा मानना है कि कर्मकाण्ड में रुचि उत्पन्न करने के लिए उसमें बहुत तरह के फलों का प्रलोभन दिया गया है परन्तु भक्तितत्त्व में वर्णित फल, मात्र प्रलोभन नहीं, वरन् नित्य-सत्य है।

श्रीहरिनाम के समान कुछ भी नहीं है तथा श्रीहरिनाम देने वालों का अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता। जो श्रद्धावान व्यक्ति को श्रीहरिनाम प्रदान करते हैं, वह ऐसा करके श्रीकृष्ण-भक्ति ही करते हैं जबकि कर्मकाण्ड के यज्ञ कराने वालों का धन का लोभ रहता है। इसलिए उसमें कपटता का प्रभाव आ ही जाता है। वेद व स्मृतियाँ भगवान के नाम के फल की अनन्त महिमा का बखान करती हैं परन्तु स्वार्थी व्यक्ति इसे नहीं

मानते। कर्मकाण्डी व्यक्ति हरिनाम करते हुए बहुत प्रकार के शुभ व अशुभ सांसारिक फलों की इच्छा रखते हैं। फल की कामना को त्याग कर जो कर्म करते हैं, उनका हृदय विशुद्ध हो जाता है तथा विशुद्ध-हृदय में ही सांसारिक विषयों से वैरागय तथा आत्मतत्त्व में अनुराग उदित होता है। धीरे-धीरे यह अनुराग ही प्रगाढ़-प्रेम में परिवर्तित हो जाता है।

श्रीहरिनाम चिन्मय हैं, उनमें अर्थवाद हो ही नहीं सकता

श्रीहरिनाम करने से आत्मसाक्षात्कार व आत्मरति स्वत: ही हो जाती है। साधनकाल में ही हरिनाम साध्य-वस्तु का कुछ अनुभव करवा देते हैं। निष्काम-कर्म का चरमफल, हरिनाम में रुचि उत्पन्न होना है। सत्य-वस्तु के लिए किया गया निष्काम-कर्म निश्चित रूप से हरिनाम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है। हरिनाम उस फल को, बड़ी सरलता एवं शीघ्रता से प्रदान करते हैं, जोकि चौदह लोकों में भ्रमण करने वाला ब्राह्मण भी प्राप्त नहीं कर सकता। प्रत्येक दृष्टि से हरिनाम का फल सर्वोपरि ही होगौ कर्मी व ज्ञानी अपनी ईर्ष्या के कारण जितना भी प्रयास क्यों न कर लें वे, नाम की महिमा का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

नामाभास के द्वारा सभी कर्मों का व ब्रह्मज्ञान का फल प्राप्त होता है

नामाभास होने मात्र से ही सभी कर्मों का और ज्ञान का फल प्राप्त हो जाता है। हरिनाम के नामाभास से ही यदि इतना फल मिलता है तब शुद्ध नाम क्या दे सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतएव शास्त्रों में जितनी भी श्रीहरिनाम की महिमा कही गई है, शुद्ध-नामाश्रित-भक्त उसको निश्चित रूप से प्राप्त करता है। इसमें जिसको संदेह है, वह व्यक्ति अधम है तथा नामापराध से उसका अवश्य ही पतन हो जायेगा। वेदों में, रामायण में महाभारत में तथा पुराणों के प्रारम्भ में, मध्य में तथा अन्त में हरिनाम की महिमा ही वर्णित की गई है। वेद-वाक्यों में जो हरिनाम की महिमा गाई गई है, वह अनादि और अटल है। उसमें अर्थवाद की कल्पना करने से भला क्या फल मिलेगा? अर्थात् हमारे द्वारा ये बड़ी भारी भूल होगी या ये हमारा अपराध ही होगा कि हम ये गलत धारणा मन में बनाये रखें कि हरिनाम की जो इतनी महिमा हमारे शास्त्रों में कही गयी है, ये सब काल्पनिक है।

श्रीहरिनाम की शक्ति, ज्ञान एंव कर्म की शक्ति की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभुजी को कहते हैं नाम और नामी एक ही हैं। हे प्रभु! आपने अपने नाम में तमाम शक्तियों का समावेश करके श्रीहरिनाम-संकीर्तन को सर्वश्रेष्ठ-भक्ति बना दिया है। हे प्रभु! आप पूर्ण-स्वतन्त्र हैं तथा सर्वशक्तिमान हैं। आपकी इच्छा से ही विधि का विधान चलता है। आपने अपनी इच्दानुसार कर्म को जड़ बनाया है अर्थात् कर्म से केवल दुनियावी वस्तुओं की ही प्रापिति हो सकती है जबकि आपने ही ज्ञान में मोक्ष प्रदान करने की शक्ति भर दी है। हे प्रभु! आप स्वतन्त्र इच्छामय हो। आपने अपने नामाक्षरों में सारी की सारी शक्तियाँ भर दी हैं, इसीलिए आपका नाम भी आपकी ही तरह सर्वशक्तिमान है। अत: जो बुद्धिमान पुरुष हैं, वे नाम में अर्थवाद नहीं करते।

इस अपराध से मुक्त होने का उपाय

नाम के प्रति यदि अर्थवाद रूपी अपराध हो जाये तो बड़ी दीनता के साथ वैष्णव सभा में जाकर वैष्णवों से अपने अपनाध के बारे में निवेदन करना चाहिए तथा दु:खी मन से नामापराध के प्रति श्रमा-याचना करनी चाहिए। हरिनाम की महिमा को जानने वाले भगवान के भकत आप पर कृपा करते हुये आप को क्षमा

करेंगे। श्रीहरिनाम की अनन्त महिमा पर विश्वास ना करते हुये हरिनाम में अर्थवाद की कल्पना करने की चेष्टा करना केवल मात्र माया की विडम्बना है। नाम में अर्थवाद रूपी अपराध करने वाले के साथ यदि कभी बातचीत हो जाये तो उसी अवस्था में कपड़ों के साथ गंगा जी के जल से स्नान करना चाहिए।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण की प्रिय वंशी की कृपा में जिनका विश्वास है, 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' उनका अंलकार है।

नवम् अध्याय

हरिनाम के बल पर पाप करना

नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न
विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः

श्रीगदाधर जी, श्रीगौरांग. महाप्रभु, श्रीमती जाह्नवा देवी जी के जीवन-स्वरूप श्री नित्यानन्द जी की जय हो। सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि जितने भी भक्त हैं सभी की जय हो, जय हो।

नाम ग्रहण करने से सभी प्रकार के अनर्थ दूर होते हैं

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिनाम शुद्ध सत्वमय हैं और भागयवान जीव ही श्रीहरिनाम का आश्रय लेते हैं। हरिनाम के प्रभाव से जीव के हृदय में भरे हुये सारे अनर्थ अति शीघ्र दूर हो जाते हैं। हृदय की दुर्बलता नामक अनर्थ का तो उनके मन में स्थान ही नहीं रहता। हरिनाम के जप से साधक के मन में जब दृढ़ता आती है तब उसमें पापमय-बुद्धि नहीं रहती। यहाँ तक कि, हरिनाम के प्रभाव से उसके सारे पिछले पाप नष्ट हो जाते हैं और उसका चित्त बिल्कुल शुद्ध हो जाता है। अज्ञान के कारण पाप बीज तथा पाप की वासना जीव के हृदय में रहती है, उसके कारण जीव संसार में कष्ट भोगता रहता है। नाम-जप के द्वारा जब किसी का हृदय निर्मल हो जाता है तो उसके अन्दा सीाी जीवों के प्रति दया-भाव उदित होता है और वह सदा-सर्वदा दूसरों का मंगल करने में ही लगा रहता है। उससे दूसरों का कष्ट नहीं देखा जाता उसकी हर समय यही चेष्टा होती है कि वह कैसे दूसरे जीवों के क्लेश से उत्पन्न ताप को शान्त कर सके। ऐसी स्थिति में विषय-वासना तो उसे बिल्कुल तुच्छ सी प्रतीत होती है। इन्द्रियों के भोगों की लालसा तो उसके हृदय में रहती ही नहीं। धन-दौलत और कामिनी के प्रति वह आकर्षित तो होती ही नहीं, उन्हें प्राप्त करने के लिए वह प्रयास तो करता ही नहीं, बल्कि इन सबसे वह घृणा करने लगता है। संसार में रहने के लिए ईमानदारी से जितना भी वो धन कमा पाता है, उसी में उसको सन्तोष रहता है। उसकी वास्तविक चेष्टा तो भगवान की भक्ति के अनुकूल कार्यो को करने में तथा भक्ति के प्रति कूल कार्यों को त्यागने में ही रहती है। श्रीकृष्ण ही उसके एकमात्र रखवाकर्त्ता एवं पालनकर्त्ता हैं इस प्रकार का द्ढ़ विश्वास उसमें होता है। उसके हृदय में शरीर के प्रति "मैं" भाव तथा शरीर सम्बन्धी व्यक्तियों तथा वस्तुओं में "ममता" नहीं रहती। स्वाभाविक रूप से वह तो बड़ी दीनता के साथ हमेशा ही हरिनाम का आश्रय लिए रहता है। ऐसे में उसकी पापों में मति कैसे हो सकती है या ऐसी अवस्था में उसके द्वारा पाप भला कैसे हो सकते हैं।

हरिनाम के द्वारा पिछले पाप तथा पापों की गन्ध भी अति शीघ्र दूर हो जाती है

निरन्तर हरिनाम करते रहने से पहले के जो दुष्ट भाव हैं, वे धीरे-धीरे क्षीण होते चले जाते हैं और उनके स्थान पर साधक के हृदय में पवित्र स्वभाव प्रकटित होने लगता है। जब हरिनाम में थोड़ी-थोड़ी रुचि

उत्पन्न हो रही होती है, ऐसे समय में अर्थात् पापमय जीवन एवं हरिनाम के आश्रय में जीवन के सन्धिकाल में कभी-कभी पिछले पापों की कुछ गन्ध रह जाती है। किन्तु निरन्तर हरिनाम करते रहने से या यूँ कहें कि श्रीहरिनाम के प्रभाव से उसके हृदय में विद्यमान पूर्व पापों की वह गन्ध भी शीघ्र ही समाप्त4 हो जाती है और जीव की भगवद्-भक्तिमय मति उदित हो जाती है।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि है प्रभु! आपने महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन के सामने प्रतिज्ञा की थी कि मेरा भक्त कभी भी संकट में नहीं पड़गा और यदि कभी किसी कारणवश ऐसा हुआ भी तो आप स्वयं उस की रक्ष्ज्ञा करेंगे । यही कारण है कि हरिनाम करने वाले के तमाम पाप आपकी कृपा से खत्म हो जाते हैं, जबकि ज्ञानमार्गी व्यक्ति पापों से छुटकारा पाने के लिए बहुत प्रयत्न करता है परन्तु आपका आश्रय छोड़ने के कारण उसका शीघ्र ही पतन हो जाता है। अत: हे प्रभु! ये सिद्धान्त है कि जो आपके चरणाश्रित है, ऐसे भक्त के निकट विघ्न कभी नहीं आते।

असावधानी वश यदि पाप हो जाता है तो उसके प्रायश्चित की कोई आवश्यकता नहीं रहती

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि यदि कभी किसी भक्त से प्रमाद वश अथवा असावधानीवश कोई पाप हो जाये तो उसे उसके लिए प्रायश्चित की कोई आवश्यकता नहीं जोती क्योंकि वह पाप तो क्षणिक है। वह ज्यादा समय तक भक्त के पास टिक नहीं सकता। वह क्षणिक पाप तो हरिनाम के रस के प्रवाह में बह जाता है। इसलिए असावधानीवश भक्तों के द्वारा हुये किसी भी पाप से उनकी दुर्गति नहीं होती। परन्तु यदि कोई चंचल व्यक्ति हरिनाम के बल पर नये-नये पापा करता चला जाता है तो उसकी ये क्रिया केतल मात्र कपटता ही होगी क्योंकि इसमें उसने कपटता का आश्रय लिया हुआ है अर्थात् यदि कोई व्यक्ति यह सोच कर नये-नये पाप करता रहे कि हरिनाम के प्रभाव से मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे तो वह कपटी है। नामापराध से व्यक्ति को शोक एवं मृत्यु रूपी भय की प्राप्ति होती है। भक्ति शास्त्रों के अनुसार असावधानी और जानबूझ कर किये जानेवाले पापों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है।

पापों में मति होने से ही नामापराध होता है

संसारी व्यक्ति जब पाप करता है तो उसके लिए प्रायश्चित तथा पश्चाताप् का विधान है परन्तु यदि कोई यह सोचकर कि मेरे द्वारा किया गया हरिनाम मेरे पाप धो डालेगा, ऐसे हरिनाम के बल-बूते पर पाप करने की भावनाओं को हृदय में रखने से उसका कोई प्रायश्चित नहीं है, उसकी तो दुर्गति ही होगी। यहां तक की बहुत तरह की नरक यन्त्रणाओं में कष्ट पाने पर भी उसका उद्धार नहीं होता।

मन में पाप की भावना आने से जब इतना कष्ट मिलता है तो नाम के सहारे पाप कर्म करना कितना बड़ा दोष है, उसके बारे में भला क्या कहा जाये।

धूर्त व्यक्ति के द्वारा हरिनाम के बलबूते पर पाप करना मर्कट वैराग्य ही है

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मैंने शास्त्रों से सुना है कि भगवान का एक नाम जितने पापों का धो सकता है उतने पाप कोई महापापी करोड़ों जन्मों में भी नहीं कर सकता। घर में मसाला पीसते हुए, झाड़ू-पोचा लगाते हुए तथा रसोई बनाने के लिए आग जलाते हुए इत्यादि तरीके से कीड़े-मकोड़ों के अनजाने में भी मर जाने से जो पाँच तरह के पाप लगते हैं तथा दुनिया के महापाप भी नामाभास मात्र से दूर हो जाते हैं। परन्तु शास्त्रों के इन वाक्यों के बलबूते पर धोखेबाज लोग हरिनाम करने का ढोंग करते हैं। गृहस्थी के

झंझटों से बचने के लिए वे वैरागी का वेश धारण करके दौलत और कामिनी की लालसा से जर्जरित होकर देश-विदेश में घूमते रहते हैं।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! आपने ही तो कहा था कि जो मर्कट-वैराग्य करता है अर्थात् वह व्यक्ति जो गृहत्यागी होते हुये भी स्त्रियों के संग सम्भाषण करता है। उसका वैराग्य-वेश सिर्फ दिखावे के लिए ही होता है अश्लील मज़ाक करता है :-

निष्कपट रूप से हरिनाम का आश्रय न करने पर अर्थात् मर्कट-वैराग्य करने पर इस प्रकार का अपराध होना अनिवार्य है

वैरागी का वेश धारण करके जो ढोंगी अपनी स्त्री के साथ घर में रहता है, वह पृथ्वी पर भार-स्वरूप है। ऐसे ढोंगियों से ज्यादा बातचीत नहीं करनी चाहिए। जिस भक्त ने हरिनाम का आश्रय लिया है, वह घर में रहे या जंगल में, इसमें कोई दोष नहीं है। हरिनाम के बल पर पाप करना या पाप की भावना को हृदय में पाले रखना महा-अपराध है, ऐसा करने से भजन में बाधाएँ आती हैं। निष्कपट हाकर हरिनम करने से भगवान श्रीहरि को बड़ा संतोष होता है।

नामाभासी-व्यक्ति को यदि बुरी संगति मिल जाये तो निश्चय ही उससे यह अपराध होगा अर्थात जिसके हृदय में शुद्ध-हरिनाम का उदय हो चुका है, उसके द्वारा यह अपराध नहीं होगा।

शुद्ध-नामाश्रित-व्यक्ति को नामाराध स्पर्श भी नहीं करते

शुद्ध-नामाश्रित-व्यक्ति को कभी भी एवं किसी भी रूप से शास्त्रों में वर्णित दस-नामापराध स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि नामाश्रित-व्यक्ति की सदा श्रीहरिनाम ही रक्षा करते हैं। उससे अपराध कभी हो ही नहीं सकता। जब तक जीव के हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं हाता, तब तक ही अपराध होने का भय बना रहता है। इसलिए नामाभासी-साधक यदि अपना मंगल चाहता है तो उसे नाम के बल पर पापबुद्धि जैसे अपराधों से दूर रहना चाहिए।

सावधानी से कब तक अपराधों को छोड़ना चाहिए

शुद्ध-नामाश्रित-व्यक्तियों के संग में रहकर सर्वदा ऐसा आचरण करतेक रहना चाहिए जिसे हमसे कोई अपराध न हो। जिनके मुख से शुद्ध-नाम उच्चारित होता है, उनका मन सदैव दृढ़ रहता है। उनका दृढ़ मन एक क्षण के लिए भी श्रीकृष्ण के पादपद्मों से विचलित नहीं होता। अत: जितने दिन तक साधक के अन्दर नाम का बल विद्यमान नहीं होता अर्थात् जब तक उसके हृदय में शुद्ध-नाम उदित नहीं होता, तब तक उसे अपराधों से भयभीत रहना ही चाहिए। साधक को चाहिए कि वह विशेष-यत्न के साथ पापमय-बुद्धि को दूर करके दिनरात निरन्तर मुख से हरिनाम करता रहे। श्रीगुरुदेव की कृपा से जब उसे सम्बन्ध ज्ञान होगा, तब ही उसके द्वारा श्रीकृष्ण-भक्ति व श्रीकृष्ण-नाम ठीक प्रकार से हो पायेगा।

इस अपराध का प्रतिकार

यदि प्रमाद से अर्थात् असावधानीवश नाम के बल पर पापबुद्धि होती है तो शुद्ध-वैष्णवों के संग के द्वारा उसे दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। पाप-वासना एक ऐसा लुटेरा है जो भक्ति मार्ग में सब कुछ लूट कर ले जाता है। ऐसे समय पर विशुद्ध-वैष्णव ही भक्तिमार्ग में हमारी इन लुटेरों से रक्षा करते हैं। यदि उच्च स्तर से हम इन भक्ति-मार्ग के रक्षकों का अर्थात् वैष्णवों का नाम पुकारेंगे तो पापवासनामय लुटेरे हमारे हृदय से भाग जायेंगे और हमारे भक्तिमार्ग के रक्षक हमें बचाने के लिए आ जायेंगे, इसलिए शुद्ध-वैष्णवों को

आदर के साथ स्मरण करते रहना चाहिए अथवा आदर के साथ शुद्ध-वैष्णवों का नाम उच्चारण करते रहना चाहिए।

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि बड़े आदर के साथ वैष्णवों को पुकारें। ऐसा करने से "डरो मत, मैं तुम्हारा रक्षक हूँ"—ऐसा कह कर वह वैष्णव तुम्हारे पास आ जायेंगे।

श्रील भक्ति विनाद ठाकुर जी कहते हैं कि वैष्णवों के चरणों की सेवा करना ही जिनका व्रत है, वे ही श्रीहरिनाम चिन्तामणि का गान करते हैं।

दशम अध्याय

श्रद्धाहीन व्यक्ति को नाम का उपदेश करना, अपराध है

अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यश्रृण्वति
यश्चोपदेशः शिवनामापराधः।।

श्रीगदाधर जी, श्रीगौरांग व श्रीमती जाह्नवा देवी जी के प्राणस्वरूप श्रीनितयानन्द प्रभुजी की जय हो। सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी की तथा श्रीवास पंडित आदि सभी भक्तों की सर्वदा जय हो।

अपने दोनों हाथ जोड़कर श्रीहरिदास ठाकुर जी महाप्रभु जी से कहते हैं— हे प्रभु! अब आगे के नामापराधों के बारे में आप श्रवण कीजिए।

हरिनाम में श्रद्धा होने पर हरिनाम का अधिकार प्राप्त होता है

हरिनाम में होने वाले दृढ़ विश्वास को श्रद्धा कहते हैं। ये श्रद्धा जिनके हृदय में उदित नहीं हुई, वे बहिर्मुख व दुखशायी अर्थात् बुरे उद्देश्य वाले व्यक्ति हरिनाम नहीं सुनना चाहते क्योंकि उनका हरिनाम में अधिकार ही उत्पन्न नहीं हुआ होता। श्रद्धावान व्यक्ति ही हरिनाम करने के उचित अधिकारी हैं। ऊँची-जाति, ऊँचा-कुल, दुनियावी-ज्ञान, ताकत, विद्या एंव धन आदि हरिनाम का अधिकार देने के योग्य नहीं हैं। हरिनाम की महिमा में जिनका सुदृढ़ विश्वास है, तमाम शास्त्रों में उन्हीं को श्रद्धावान कहा गया है।

श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देने से नाम-अपराध होता है

वैष्णवों के आचरण के अनुसार उस व्यक्ति को हरिनाम-दीक्षा प्रदान नहीं की जाती, जिनकी भगवान के नाम के प्रति श्रद्धा न हो। श्रद्धाहीन-व्यक्ति यदि हरिनाम-दीक्षा प्राप्त कर लेते हैं तो वह अवश्य ही हरिनाम के प्रति अवज्ञा करेंगे, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। जिस प्रकार सूअर को रत्न देने से वह उसे तोड़-फोड़ देगा, बन्दर को वस्त्र देने से वह उसे फाड़ देगा, उसी प्रकार श्रद्धाहीन-व्यक्ति नाम को प्राप्त करके खुद अपराधी बन जाता है और साथ ही अपने गुरु को भी शीघ्र ही अभक्त बना देता है।

श्रद्धाहीन व्यक्ति यदि हरिनाम के लिए प्रार्थना करे तो उससे किस प्रकार का व्यवहार करना उचित है

श्रद्धाहीन व्यक्ति यदि कपटता करके वैष्णवों के पास जाकर हरिनाम माँगते हैं तो उनके धुर्ततापूर्ण वाक्यों को साधु-पुरुष समझ लेते हैं और उन्हें कभी भी हरिनाम नहीं देते। साधु उन्हे बड़े स्नेह से कहते हैं कि तुम कपटता छोड़ दो तथा प्रतिष्ठा की आशा को भी छोड़कर हरिनाम में श्रद्धा करो। हरिनाम में श्रद्धा होने से अनायास ही तुम्हें हरिनाम मिल जायेगा और हरिनाम के प्रभाव से तुम इस संसार से पार हो जाओगे परन्तु जब

तक तुम्हारी हरिनाम में श्रद्धा नहीं होती तबअ तक तुम्हारा हरिनाम लेने का कोई अधिकार ही नहीं है। तुम शुद्ध भक्तों के मुख से शास्त्रों में वर्णित हरिनाम की महिमा श्रवण करो तथा प्रतिष्ठा की आशा छाड़कर ड़ीनता को अपनाओ। जब तुम्हारी नाम में श्रद्धा हो जायेगी, तभी हरिनाम रूपी महाधन के धनी, श्रील गुरुदेव, तुम्हे हरिनाम रूपी महाधन प्रदान करेंगे।

धन के लोभ से यदि कोई श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देता है तो वह नामापराधी होकर नरक में जाता है।

इस अपराध से छुटकारा प्राप्ति का उपाय

असावधानीवश श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम दे दिया जाये तो उससे गुरु के पतन का डर बना रहता होता है। ऐसी अवस्था में गुरु को चाहिए कि वह वैष्णव-समाज में जाकर श्रद्धाहीन को हरिनाम देने के बारे में बताये और उस दुष्ट-शिष्य को त्याग दे। ऐसा नहीं करने से इसी अपराध के कारण धीरे-धीरे वह गुरु भक्तिहीन ओर दुराचारी होकर माया के जाल में फंस जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! आपने हरिना का प्रचार करने वाले भक्तों को यही आदेश दिया है कि श्रद्धावान व्यक्ति हो ही श्रीहरिनाम का उपदेश प्रदान करें तथा गाँव-गाँव व शहर-शहर में श्रीहरिनाम की महिमा का प्रचार करें। उच्च नाम-संकीर्तन के द्वारा श्रीकृष्ण नाम के प्रति श्रद्धा का प्रचार करें।

श्रद्धा प्राप्त करके ही जीव सद्‌गुरु के सम्बन्ध में चिार करेगा। श्रद्धावान जीव सद्‌गुरु से श्रीहरिनाम ग्रहण करके अनायास ही श्रीकृष्ण-प्रेमधन प्राप्त कर लेगा। गुरु को चाहिए कि वह चोर, वैश्य तथा कपटी आदि पापों में लिप्त व्यक्तियों की पापमय बुद्धि को समाप्त करके उनके हृदय में श्रीकृष्ण नाम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करें। इस प्रकार के व्यक्तियों की जब हरिनाम में दृढ़-श्रद्धा जो जाये तो वे उन्हें हरिनाम प्रदान करें। इस प्रकार हरिनाम का उपदेश देकर सारे विश्व का उद्धार करें।

श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देने का फल

पापियों की पापमय बुद्धि को खत्म न करके तथा उनके हृदय में भगवद्-नाम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न न करके जो व्यक्ति उन्हें हरिनाम-धन प्रदान करता है, उसका इसी अपराध से पतन होजाता है। श्रद्धाहीन शिष्य हरिनाम प्राप्त करके नामापराध करता है, जिससे गुरु की भक्ति-रस प्राप्ति में बाधा पहुँचती है। इस नाम-अपराध के कारण गुरु और शिष्य, दोनों ही नरक में जाते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु जी को श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! आपने जगाई और मधाई के प्रति कृपा की थी । हे गौरहरि! आपने पहले उनके मन में हरिनाम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की और फिर उन्हें हरिनाम प्रदान किया। इस अद्‌भुत चरित्र को सभी लोग श्रद्धा के साथ अपने जीवन में आचरण करें।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते है कि भक्तों के चरण तथा भक्तों की सेवा ही जिनका आनन्द हैं। श्रीहरिनाम चिन्तामणि उनके गले का हार है।

गयारहवाँ अध्याय

अन्य शुभकर्मों के साथ-साथ नाम को बराबर समझना

धर्म-व्रत-त्याग-हुतादि-सर्व

शुभ-क्रिया-साम्यमपि प्रमादः

नाम-प्रचार के उद्देश्य से अवतरित श्रीहरिनाम के अवतार स्वरूप श्रीगौरचन्द्र जी की जय हो। समस्त तत्त्वों के सार श्रीहरिनाम की जय हो। श्रील हरिदास ठाकुर जी बोले— हे प्रभु! दूसरे शुभ कर्म कभी भी हरिनाम की साधना के समान नहीं हो सकते हैं।

नाम का स्वरूप

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहने लगे— हे प्रभु! आपका स्वरूप तो चिन्मय सूर्य के समान है। आपका नाम, श्रीविग्रह, धाम तथा लीला सभी चिन्मय हैं। आपके मुख्य नाम आपसे अभिन्न हैं जबकि जड़ीय अर्थात् दुनियावी वस्तुओं के नाम उन वस्तुओं से भिन्न हैं। भक्तों के मुख से उच्चारित भगवद्नाम, गोलोक से आकर प्रकट होते हैं। यह हरिनाम, आत्मा के माध्यम से सारे शरीर में फैलकर जिह्वा के ऊपर नृत्य करते हैं। भगवान का नाम चिन्मय है तथा गोलोक-धाम से अवतरित होता है, इस प्रकार की भावना से हरिनाम करनेपर ही शुद्ध-हरिनाम होता है। जिसका ऐसा दिव्य ज्ञान नहीं है और जो हरिनाम में जड़ीय बुद्धि रखते हैं, उन्हें बहुत लम्बे समय तक नरक की यंत्रणाओं को सहना होता है।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते कि— हे प्रभु! शास्त्रों में आपको प्राप्त करने के जो उपाय बताये गये हैं, अलग-अलग अधिकारों के कारण वे उपाय— कर्म, ज्ञान व भक्ति के विभिन्न अंगों के कारण बहुत से हो गये हैं।

कर्म का स्वरूप

जड़-बुद्धि से ग्रसित व्यक्ति जड़ीय-द्रव्यों तथा काल के आश्रय में रहकर मृत्यु के भय से आपकी साधना करता है। हे हरि! आप जीवों को अभय देने वाले हो तथा आपके समान और कोई नहीं है। आपके चरणों का आश्रय लेने मात्र से ही जीव भवसागर से पार हो जाता है। कर्म-मार्ग में आपके चरणों का आश्रय प्राप्त करने के लिए यज्ञ करना, तालाब व कुएँ का निर्माण करवाना, तीनों समय स्नान करना, दान, योग, वर्णाश्रम-धर्म का पालन, तीर्थयात्रा, व्रत, माता-पिता की सेवा, ध्यान, ज्ञान, देवताओं के लिए तर्पण तपस्या तथा प्रायश्चित आदि विधान— जड़ीय द्रव्यों तथा जड़ीय भावों को आश्रय करने के कारण जड़ीय हैं। इन सब उपायों के द्वारा जड़ीय द्रव्यों को आश्रय करके हमेशा ही शुभकर्म होता है। जड़ीय अर्थात् दुनियावी उपायों का चरमफल भी जड़ीय अर्थात् दुनियावी ही होता है पनन्तु जब किसी साधक की भक्ति में सिद्धि प्राप्त होती है तो यह जड़ीय व अनित्य उपाय अपने आप ही छूट जाते हैं क्योंकि तमामा सिद्धियों का सार पूर्णानन्दमय भगवान की प्राप्ति ही है। यही जीवों का सर्वोतम उपेय अर्थात् प्रयोजन है तथा यही सभी प्रयोजनों के सारों का सार है। जड़ीय द्रव्य और जड़ीय काल आनन्द से रहित होते हैं परन्तु बद्धजीव इन जड़ीय वस्तुओं के बिना नहीं रह पाता। उसकी तमाम क्रियाओं में तथा चिन्ता में जड़ीय-भाव अवश्य ही विद्यमान रहता है किन्तु इस जड़ीय सिद्धान्त में रहते हुये जड़ातीत शुद्ध-भक्ति की खोज करना ही कर्म आदि की कुशलता है। अतः क्रमानुसार देखा जाये तो सभी शुभ-कर्म जीव के प्रयोजन भगवद्-प्रेम के उपाय ही हैं लेकिन इस मार्ग से जीव को भगवद्-भक्ति व भगवद्-प्रेम बहुत विलम्ब से मिलता है क्योंकि यहाँ पर उपाय तो दुनियावी जो कि जड़ है भगवद्-प्रेम है जोकि पूर्णतया चेतन है। अतः शुभकर्मो के द्वारा भगवद्-प्रेम की प्राप्ति में होने वाले विलम्ब का करण कर्मो का जड़ होनो और भगवद्-प्रेम का दिव्य होना है।

साधनकाल में हरिनाम किस प्रकार उपाय है?

हे प्रभु! आपने विशेष कृपा करके जगत्वासियों को हरिनाम प्रदान किया इसलिए अपना मंगल चाहने वाले जीव, कृष्ण-प्रेम रूपी सिद्धि को प्राप्त करने के लिए हरिनाम का ही आश्रय लेते हैं। शास्त्रों के मतानुसार हरिनाम ही कृष्ण-प्रेम प्राप्ति का उपाय है इसलिए इसे दूसरे-दूसरे सुकर्मों के साथ गिना गया है। ठीक उसी प्रकार जैसे सर्वेश्वर भगवान श्रीविष्णु जी की ब्रह्मा जी एवं शिवजी के साथ इस त्रिभुवन में देवता के रूप में गणना की जाती है।

श्रीहरिनाम शुद्ध सत्त्वमय है

श्रीहरिनमा का स्वरूप शुद्ध सत्त्वमय होता है। इसमें लेशमात्र भी जड़ीय-गन्ध नहीं होती। जड़ीभूत जीवों ने अर्थात् अविद्याा ग्रस्त जीवों ने श्रीहरिनाम में जड़ीय-भावना करके उसे अन्य शुभ कर्मो के साथ एक मान लिया है। मायावाद के कारण इस प्रकार का नामापराध होता है, जिस दोष के कारण हमेशा ही भक्ति में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

हरिनाम साधन होते हुये भी साध्य है

हे प्रभु! आपका श्रीकृष्ण-नाम पूर्णानन्द तत्त्व है। यह श्रीकृष्ण नाम साधन भी है और साध्य भी। इसी कारण इसकी विशेष महिमा है। जीवों के ऊपर कृपा करने के लिए श्रीहरिनाम ने साधन के रूप में इस ध रातल पर अवतार लिया है। तमाम शास्त्र इसके प्रमाण हैं। जहाँ जर कहा गया है कि श्रीकृष्ण नाम उपाय भी है और उपेय भी अर्थात् ये हरिनाम साधन भी है और साध्य भी। अपने-अपने अधिकार के अनुसार सभी साध क हरिनाम का अनुसरण करते हैं। ये बड़ी विचित्र बात है कि जीव के हृदय में आत्मरति उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक वह हरिनाम को आत्मरति रूपी उपेय की साधना समझता रहता है।

शुभ-मार्ग गौण उपाय है जबकि हरिनाम मुख्य उपाय है

उपाय दो प्रकार के होते हैं— गौण उपय एंव मुख्य उपाय। गौण उपाय शुभकर्म हैं और मुख्य उपाय भगवान का नाम है। शास्त्रों में जितने भी प्रकार के शुभ कर्मो का वर्णन पाया जाता है उनमें से कोई भी हरिनाम के समान नहीं हो सकता। यही सब शास्त्रों का मर्म है। सरल हृदय से जब कोई श्रीकृष्ण-नाम का कीर्तन करता है तब दिव्य-आनन्द प्रकट होकर उसके चित्त को आनन्द से विभोर करा करके उससे नृत्य कराता है। श्रीकृष्ण नाम का ऐसा चमत्कारिक स्वभाव है कि ये साधक को ऐसी आत्म रति व आत्म-क्रीड़ा प्रदान करता है कि जिस आनन्द के ऊपर और कुछ होता ही नहीं। ब्रह्मज्ञान और योग में जो आनन्द है, वह बहुत थोड़ा है क्योंकि वह तो केतल मात्र इस दुनियाँ के दु:खों से छुटकारा मात्र है। अथवा ये भी कहा जा सकता है कि ब्रह्मज्ञान व योग में तो उस परम-आनन्द की मात्र छाया है जबकि श्रीकृष्ण-नाम में जो सुख है, वह असीम है।

अन्य शुभ-कर्मों से हरिनाम की विलक्षणता

हरिनाम के सम्बन्ध में विलक्षण बात ये है कि साधन काल में हरिनाम उपाय स्वरूप है जबकि सिद्धावस्था में वही नाम उपेय स्वरूप है। उपाय-स्वरूप हरिनाम में ही उपेय सिद्ध है जबकि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि अन्य शुभ-कर्मों में ऐसी बात नहीं है। दुनियावी सभी शुभ-कर्म जड़ाश्रित होते हैं जबकि हरिनाम सदा ही चिन्मय है एंव स्वाभाविक ही सिद्ध है। साधन काल में भी हरिनाम शुद्ध और निर्मल होता है किन्तु साधक के अनर्थो के कारण मलिन सा लगता है। साधु-संग प्राप्त होने से ही जड़बुद्धि का विनाश हो जाता है।

जड़बुद्धि के नाश हेने पर अर्थात् अनर्थ नष्ट हो जाने के बाद ही साधक के हृदय में शुद्ध नाम का स्फुरण होता है। हरिनाम करने वाले साधक हो छोड़कर अन्यान्य शुभ-कर्म करने वाले साधक उपेय को प्राप्त कर लेने पर उपाय को छोड़ देते हैं किन्तु हरिनाम करने वाले भगवद्भक्त कभी भी हरिनाम को नहीं त्यागते। यह बात अलग है कि सिर्फ सिद्धावस्था में ही शुद्ध नाम भजन होता है। शुद्ध-नाम अन्य शुभ-कर्मों से अति विलक्षण है। यही नाम के स्वरूप का अपूर्व लक्षणहै। वेदों में ऐसा कहा गया है कि साधन काल ें ही श्रीगुरुदेव की कृपा से ऐसा विलक्षण ज्ञान होता है। साधनावस्था में जिनको यह ज्ञान नहीं है, वे अभी नामापराधी हैं। **श्रीहरिनाम ही सर्वोपरि है। श्रीहरिनाम के समान कोई साधना नहीं है**— इस विश्वास के साथ जो हरिनाम करते हैं, बहुत जल्दी ही उनके हृदय में शुद्ध नाम उदित हो जाता है तथा वे पूर्णानन्द स्वरूप श्रीहरिनाम रस का पान करते रहते हैं।

इस अपराध से बचने का उपाय

वैष्णव-अपराध रूपी दुष्कृति के कारण यदि किसी साधक की अन्य शुभकर्मों के साथ श्रीहरिनाम में समबुद्धि होती है तो उस साधक को चाहिए कि वह उस दुष्कृति को समाप्त करने के लिए पूरा प्रयत्न करें, तभी उस साधक की हरिनाम के प्रति शुद्धबुद्धि होगी और उसे श्रीकृष्ण-प्रेमधन की प्राप्ति होगी। नामाचार्ण श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि — हे प्रभो! चारों वर्णो से बाहर यदि अन्त्यज जाति का गृहस्थी भी शुद्ध नाम परायण हो तथा कोई पवित्र भाव से उसकी चरण रज लेकर अपने शरीर पर लगाये, उसका झूठा प्रसाद सेवन करे तथा उसके चरणों का जल पान करे तो ऐसा करने से उसकी आपके शुद्ध-हरिनाम में निर्मल मति हो जाएगी बहुत से भक्तों का कहना है कि इसी प्रकार से चैतन्य महाप्रभु जी के पार्षद श्रील कालिदास जी की दुष्कृतियों की समाप्ति हुई थी और उन्हें पुनः भगवान की कृपा प्राप्त हुई थी।

बड़ी दीनता के साथि श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि— हे प्रभु! मैं जड़बुद्धि हूँ ओर एकमात्र आपका ही नाम-कीर्तन करता हूँ परन्तु अभी तक नाम-चिन्तामणि तत्त्व को प्राप्त नहीं कर पाया।

हरिदास ठाकुर जी की हरिनाम में निष्ठा

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि— हे महाप्रभु! मैं आपके चरणों में यही प्रार्थना करता हुँ कि आप कृपा करके हरिनाम के रूप में मेरी जिह्वा पर नृत्य करते रहना। आप मुझे इस संसार में रखो या अपने धाम में, जहाँ आपकी इच्छा हो वही मुझे रखो परन्तु मुझे कृष्णनामामृत कीा अवश्य पान करते रहना। जगत् के जीवों को हरिनाम देने े लिए ही आपका अवतार हुआ है और नाम ग्रहण करने वालों में से मैं भी एक हूँ, इसलिए प्रभु! मुझे अवश्य ही अंगीकार करना। मैं तो अधम हूँ परन्तु आप तो अधम-तारणहारे हैं।

हे पतितपावन! हम दोनो का सम्बन्ध भी बड़ा विचित्र है। अमारा और आपका सम्बन्ध कभी टूटने वाला नहीं है क्योंकि मैं अधम हूँ और आप अधम-तारण हो। आपसे मेरा नित्य-सम्बन्ध है, इसी लिए म4ैं आपसे हरिनामामृत प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

कलियुग में हरिनाम ही युग-धर्म क्यों हुआ

कलियुग में दूसरे सभी शुभ कार्य दुःसाध्य से हो गये हैं, अतः जीव पर करुणा करने के लिए हरिनाम ही युग-धर्म के रूप में प्रकट हुआ है।

श्रीभक्ति विनाद ठाकुर जी कहते हैं कि नामाचार्य, श्रीहरिदास ठाकुर जी के जो दास हैं तथा जो भगवद्-भक्ति का रसास्वादन करते हैं, वे अकिंचन ही श्रीहरिनाम चिन्तामणि का गान करते हैं।

बारहवाँ अध्याय

प्रमाद नामक नामापराध

श्रीमन् महाप्रभु जी की तथा उनके भक्तों की जय हो, जिनकी कृपा से मैं नाम संकीर्तन करता हूँ।

प्रमाद – नामक अपराध—

श्रीमन् महाप्रभु जी को श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते है— हे प्रभु! आपने यहाँ श्रीजगन्नाथ पुरी में सनातन गोस्वामी जी को एवं दक्षिण भरत–भ्रमण के समय गोपाल भट्ट गोस्वामी जी को प्रमाद रहित श्रीकृष्ण–भजन करने की शिक्षा दी थी । आपने नामतापराध के अन्तर्गत प्रमाद की मिनती की थी। इस नामापराध के अन्तर्गत प्रमादी की गिनती की थी। इस नामापराध के बारे में बोलते हुए आपने कहा था कि अन्य–अन्य नामापराधों को छोड़कर यदि कोई साधक हरिनाम करता है और उसके हृदय में श्रीकृष्ण –प्रेम उदित नहीं होता, तब समझना होगा कि "प्रमाद" रूपी अपराध हो रहा है जिसके कारण प्रेम–भक्ति की साध ना में बाधा उत्पन्न हो रही है।

असावधानी को ही प्रमाद कहते हैं

प्रमाद का मुख्य अर्थ असावधानी ही है। इसी से सारे अनर्थ उदित होते हैं। विद्वान–वैष्णव लोग कहते हैं कि प्रमाद भी तीन प्रकार के होते हैं— साधन–भजन में उदासीनता अर्थात् निष्ठा का अभाव, आलस्य तथा दूसरी ओर मन का जाना।

अनुराग होने तक पूरे यत्न के साथ हरिनाम करना आवश्यक है

किसी भाग्य से किसी जीव के अन्दर यदि श्रद्धा उत्पन्न होती है तो वह जीव श्रीहरिनाम लेता है। हरिनाम करते समय जब वह बड़े यत्न से भगवान को स्मरण करता हुआ, भगवान के नाम में मन को लगाकर तथा संख्या–पूर्वक हरिनाम करता है तो तब उसका हरिनाम में अनुराग उत्पन्न होता है। हमें ये याद रखना चाहिए कि जब तक हमारा हरिनाम में अनुराग उत्पन्न नहीं हो जाता, तब तक बड़े यत्न के साथ हमेशा हरिनाम करते रहना होगा।

यत्न के अभाव में साधक का चित्त स्थिर नहीं होता

साधक का मन स्वाभविक ही संसार के विषणें में आसक्त रहता है जो हरिनाम करते समय भी श्रीहरि की बजाये कहीं और अनुरक्त रहता है। ऐसे में साधक हरिनाम तो प्रतिदिन जपता है परन्तु हरिनाम जपते समय उसका चित्त हरिनाम में तो उदासीन रहता है तथा कहीं और मग्न रहता है। अब आप ही बताओ, हे गुणधम गौर हरि! जब किसी का चित्त कहीं ओर हो तथा दूसरी ओर वह हरिनाम भी कर रहा हो तो ऐसे में उसका मंगल कैसे होगा? ये ठीक है कि वह गिनकर एक लाख माला कर लेता है परन्तु इतना सब करने पर भी उसके हृदय में उस हरिनाम के अप्राकृत रस की एक बूँद का आस्वादन भी नहीं होता। हे प्रभु! यही वो प्रमाद रूपी अपराध है जो कि असावधानी से होता है। हजाँ तक रही बात संसार के विषणी लोगों की, उनके लिए मन को हरिनाम में लगाना बड़ा मुश्किल है।

यत्न करने की विधि

थोड़ी देर के लिए विषय भोगों की सारी चिन्ताओं को छोड़कर साधक को चाहिए कि वह साधु–संग

में रहकर एकान्त भाव से हरिनाम कर। ऐसा करने से धीरे-धीरे साधक का ये प्रमाद रूप दोष खत्म हो जाता है। इतना ही नहीं, धीरे-धीरे उसका चित्त भी कृष्ण नाम में सिरि होने लगता है और उसके हृ में निन्तर श्रीहरिनाम का दिव्य-रसास्वादन चलने लगता है। तुलसी जी के वृक्ष के पास अथवा श्रीकृष्ण लीला के स्थान अथवा भगवद्-भक्तों के पास बैठकर यदि उस प्रकार हरिनाम किया जाये जैसा कि पूर्व समय में भगवान के प्रेमी-भक्तों ने किया तथा साथ ही हरिनाम करने के समया को हरिनाम चिन्तन करते-करते धीरे-धीरे बढ़ाया जाये तो इससे बड़ी जल्दी ही संसारिक विषयों की भोग-वासनाओं से हम छुटकारा पा लेंगे।

अन्य प्रक्रिया

अथवा भगवद्-भक्तों के तरीके से किसी एकान्त सिान पर बैठकर, उपने कमरे के दरवाज़े बन्द करके अथवा किसी कपड़े से अपनी आँख, कान व नाक को ढककर हरिनाम करने से जल्दी ही साधक की हरिनाम में निष्ठा व रूचि इत्यादि होने लगती है तथा साथ ही इससे साधक का साधना में आया उदासीन भाव भी खत्म हो जाता है।

आलस्य रूपी रूकावट के लक्षण

हरिनाम की साधना में आलस्य के कारण भी रूचि नहीं होती। भगवद्-स्मरण के समय यदि ये आलस्य आ जाये तो साधक के इस दोष के कारण भी साधक के हृदय में हरिनाम-रस प्रकाशित नहीं होता। दुनियाँ के फालतु कार्यों में जैसे उनका समय बरबाद न हो, इस बात को ध्यान में रखते हुए भगवान के भक्त लोग हर समय भगवान का करते रहते हैं परन्तु साधक के जीवन में ये सब तभी होता है जब उसे ऐसे साधु की संगति मिले जो हर समय हरिनाम का स्मरण करता रहता है व हर समय ही हरिनाम के रस मैं डूबा रहता है तथा साथ ही वह साधु, हरिनाम के इलावा और कुछ चाहता ही नहीं।

साधक को चाहिए कि ऐसे दुर्लभ साधु की खोज करके उसकी संगति में उठे-बैठ। सच्चे साधु केआदर्श चरित्र को देखकर वैसा आचरण करते रहने से साधक का चित्त आलसय का परित्याक कर देता है। स्वभाव से ही अच्छे साधु अपने अनमोल समय को व्यर्थ नहीं गँवाते हैं अत: साधु का ये आदर्श देखने से ये निश्चित है कि साधक की भी उसी प्रकार का रूचियों में बदलाव आता रहेगा। यही नहीं, साधु का वह सुन्दा आदर्श देखकर साधक के मन में भी आता है कि कब मैं भी इनकी तरह बन पाऊँगा। कब मेरे जीवन में ऐसा सौभग्य उदित होगा जब मैं भी इन साधु-िक्तों की तरह हृदय में भगवान का स्मरण करूँगा व मुख से भगवान का नाम-कीर्तन करूँगा? साधक का यही उत्साह उसके आलस्य को खत्म करके उससे निरन्तर श्रीकृष्ण-स्मरण करवायेगा। वह स्वयं मन ही मन में यह धारणा बनाने लगता है कि आज मैं एक लाख हरिनाम करूँगा और धीरे-धीरे मैं प्रतिदिन तीन लाख यि करूँगा। भक्तों के बढ़िया आचरण को देखकर साधक के मन में हरिनाम की निश्चित संख्या करने का व उस संख्या को लगातार बढ़ाने का आग्रह पक्का होता रहता है और उसे मालूम भी नहीं पड़ता कि साधु-भक्तों की कृपा से बड़ी जल्दी उसके अन्दर भरा आलस्य भाग गया होता है।

विक्षेप से उत्पन्न बाधा

साधक के चित्त में आये विक्षेप से जो प्रमाद रूपी अपराध उदित होता है, बड़ी कोशिशों के बाद वह अपराध जाकर खत्म होता है। दौलत, स्त्री, हार-जीत, मान-सम्मान की भावना तथा धूर्तता ही उस आलस्य के अड्डे-उपरोक्त चीज़ें जब साधक के हृदय को अपनी ओर खीचंती हैं तो

स्वाभाविक ही हरिनाम में रूकावट आ जाती है।

विक्षेप को त्यागने का उपाय

श्री हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि सौभाग्यवान साधक को चाहिए कि वह कनक, कामिनी व प्रतिष्ठा इत्यादि की भावनाओं को तयागकर श्रेष्ठ वैष्णवों के आचरण के अनुसार साधना करने का प्रयत्न करे। इसमें सबसे पहले वह एकादशी, जन्माष्टमी व वैष्णवों की आविभार्व-तिरोभाव तिथियों में अपने भोग-विलास के चिन्तन का परित्याग करते हुए दिन-रात साधु-संग में रहकर हरिनाम करे। उसके बाद वह बड़े उत्साह के साथ भगवान के वृन्दावन, नवद्वीप व श्रीजगन्नाथ पुरी इत्यादि धामों में भगवान के भक्तों के साथ विभिन्न महोत्सवों में शामिल हुआ जाय तथा श्रीमद् भगवद् गीता, श्रीमद्भागवत व वैष्णव-ग्रन्थों को अनुशीलन तथा श्रवण-कीर्तन करता रहे। धीरे-धीरे उपराक्त कार्यों के समय को स्वेच्छा से बढ़ाता रहे तथा श्रीहरिकथा के महोत्सव में अपने को रमाये रखे।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी ही कहते हैं कि इस प्रकार साधना करते रहने से साधक के चित्त में श्रेष्ठ-रस उदित होने लगता है, जिससे दुनियावी निकृष्ट-रस से मन अपने-आप ही शत-प्रतिशत हटने लगता है। ऐसे समय पर यदि साधक महाजनों के मुख से भगवान के संगीतमय कीर्तन सुनें वो वह कीर्तन उसके मन व कानों को दिव्य-रस का आस्वादन करवाकर भगवान में मुग्ध कर देगा। दुनियाँ के तुच्छ विषय-भेगों की लालसा साधक के चित्त से कब खत्म हो मयी, ये उसे मालूम भी नहीं पड़ेगा तथा साथ ही महाजनों के मुख से सुना वह कीर्तन हमेशा के लिए साधक के चित्त को भगवान में स्थिर कर देगा, हतएव, यदि साधक अपने अन्दर भरे प्रमाद को हटाने के लिए ये रास्ता अपनायें तो यह दिव्य-मार्ग उसके चित्त को स्थिर करके उसे चिर-दिन के लिए दिव्य रसानन्द में डुबा देगा।

आग्रह

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हरिनाम की संख्या के लिए आपने जो संकलप लिया है, उसमें ढीलापन न हो इसके लिए बार-बार व विशेष ध्यान देना होगा तथा साथ ही सतर्क होकर अर्थात् प्रमाद छोड़कर हरिनाम-संकीर्तन करना होगा। श्रीहरिनाम ठाकुर जी कहते हैं कि साध क को चाहिए कि वह संख्या बढ़ाने के चक्करों में जयादा न पड़े। संख्या बढ़ाने की बजाये वह स्पष्ट रूप से हरिनाम का उच्चारण हो, इसकी ओर ध्यानप दे। ऐसा होने से भगवान श्रीहरि की कृपा से उसका निन्तर रिनाम होने लगेगा।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि हे प्रभु! आप मुझ पर ऐसी कृपा करना जैसे ये प्रमाद रूपी अपराध मुझे हरिनाम के रसास्वादन में बाधा न पहुँचा सके।

प्रक्रिया

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि भक्तों को चाहिए कि वे कुछ समय के लिए एमान्त में बैठकर एकाग्र मन से नाम-स्मरण करने का अभ्यास अवश्य करें। हे गौर हरि! आपके चरणों में मेरी प्रार्थना है कि आप कुझ पर ऐसी कृपा करें जैसे में भगवद्-भावों में डूबकर स्पष्ट हरिनाम के दिव्य अक्षरों का हमेशा उच्चारण कर सकूँ क्योंकि ऐसा हरिनाम इस दुनियाँ में कोई भी अपनी कोशिश

से नहीं कर सकता, आपकी कृपा के बिना तो ये सम्भव ही नहीं है।

हरिनाम करने में शेष यत्न की व आग्रह की अति आवश्यकता है। निष्कपट हरिनाम करने के लिए तो ये बहुत जरूरी है, अन्यथा साधक से अपराध होते रहेंगे।

अतः साधक को चाहिए कि वह भगवान के प्रति व्याकुल हृदय से कृपा गाँगता रहे श्रीहरिदास ङाकुर जी कहते हैं कि है प्रभी! आप तो स्वभाव से ही कृपामय है, साधक के द्वारा व्याकुल-भाव से प्रार्थना करने पर आप उस पर कृपा कर ही देते हो। ऐसे में हे प्रभु! यदि मैं आपकी कृपा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न न करूँ तो मैं समझूँगा कि हे शचीनन्दन गौरहरि! स्वयं मैं ही भाग्यहीन हूँ।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' जिनका अलंकार है, उन श्रील हरिदास ठाकुर जी के चरण कमल ही मेरा भरोसा हैं।

तेरहवाँ अध्याय

श्रुतेऽपि नाममाजात्म्यो यः प्रीतिरहितोऽधमः।
अहं ममादि परमो नाम्नि साऽप्यपराधकृम।।

अर्थात् हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी या दीक्षित होते हुए भी अधिकांश विषयी लोग इस नाशवान शरीर में "मैं और मेरपन" की बुद्धि बनाये रहते है, जो कि गलत है व ऐसी बुद्धि भक्ति-पथ से भ्रष्ट कर देती है तथा यह नामापराधों में से एक नामापराध भी है।

श्रीगदाधर पंडित जी की जय हो, श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो, सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी की जय हो तथा महाप्रभु जी के जितने भी भक्त हैं, सभी की जय हो-जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर महाशय जी भगवद्-प्रेम में गद्गद् होकर श्रीमन् महाप्रभु जी के श्रीचरणों में अन्तिम नामापराध निवेदन करते हैं। वे कहते हैं— हे प्रभु, इस अपराध के बारे में सुनें, ये अपराध सबसे निकृष्ट है। इस अपराध के कारण भी साधक के हृदय में भगवद्-प्रेम उदित नहीं होता।

हरिनाम में शराणागति की आवश्यकता

ठाकुर श्रीहरिदास जी कहते हैं कि सज्जन व्यक्तियों को चाहिए कि वे पहले वर्णन किये नौ अपराधों को छोड़कर श्रीहरिनाम में शरणागत हों। हे गौर हरि! हमारे शास्त्रों में 6 प्रकारकी शरणागति के बारे में कहा गया है। हे प्रभो! मेरी तो सामर्थ्य नहीं जो मैं विस्तृत भाव से शरणागति के रे में वर्णन कर सकूँ, तब भी आपकी प्रसन्नता के लिए संक्षेप में कहना चाहूँगा।

शरणागति के प्रकार

पहली व दूसरी शरणागति है कि संसार में रहने के लिए जो विषय भगवान की प्रसन्नता के व भगवान की भक्ति के अनुकूल हों, उन्हें लेना तथा जो विषय भगवान की भक्ति के प्रतिकूल हों, उन्हें छोड़ देना।

भगवान श्रीकृष्ण ही मेरे रखवाकर्त्ता हैं— प्रकार की सोच रखना। भगवान श्रीकृष्ण मेरे पालनकर्त्ता हैं— इस प्रकार की भावना रखना, अपने अन्दर हमेशा दीनता का भाव बनाये रखना तथा अपना

सब कुछ भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में निवेदन कर देना ही शरणागति के बाकी चार लक्षणा हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि दुनियाँ में सव्त्र, भेजन व दवाई इत्यादि इस भावना से स्वीकार करना कि ये सभी तो इस शरीर की रखा के लिए ज़रूरी हैं, क्योंकि जब मैं ज़िन्दा ही नहीं रहूँगातो मुझसे भजन भी न हो पाएगा। अपने जीवन की गाड़ी को चलाने के लिए केतल उन्हीं भक्ति के अनुकूल विषयों को ग्रहण करो जो श्रीकृष्ण को भाते हों । भक्ति के प्रतिकूल विषय जब आपके सामने आयें तो उनके प्रति अरूचि दिखाते हुए अवश्य ही उन्हें त्याग देना। इस बात को अपने दिल में बिठा लेना कि श्रीकृष्ण के बिना मेरा और कोई रक्षाकर्ता व पालनकर्ता नहीं है। हृदय में हर समय ईनता के ऐसे भाव रहने चाहिएँ कि मैं तो सबसे निकृष्ट हूँ, अधम हूँ मुझमें कोई भी गुण नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण के संसार में मैं उनका नित्य दास हूँ, उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करना ही मेरा प्रयास है।

मैं कर्त्ता हूँ, मैं दाता हूँ, मैं ही अपने परिवार का पालन करने वाला हूँ, ये मकान, ये शरीर, ये सन्तान तथा ये स्त्री— ये सब मेरे हैं। मैं ब्राह्मण हूँ या मैं शूद्र हूँ, मैं इसका पिता या इसका पति हूँ, मैं राजा हूँ या मैं प्रजा हूँ। अपनी सन्तानों का सब कुछ मैं ही तो हूँ...... इत्यादि, इस प्रकार की बुद्धि को छोड़कर अपने ध्यान को, अपनी बुद्धि को, अपनी मति को श्रीकृष्ण में लगाए रहना। इस प्रकार की भावना मन में रखना कि श्रीकृष्ण ही सबके मालिक हैं, वास्तविक कर्त्ता तो वे ही हैं, उनकी इच्छा ही बलवान है।

ठाकुर हरिदास जी कहते हैं कि इस प्रकार भावना बनाकर रखना कि मैं अपने जीवन में केतल वही कार्य करूँगा जो श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुकूल हों, अपनी इच्छा के अनुसार तो मैं कुछ सोचूँगा भी नहीं। श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार ही मेरा जीवन व मेरा परिवार चलेगा और उनकी इच्छा के अनुसार ही मैं इस भवसागर से पार होऊँगा। चाहे मैं। दु:ख में रहूँ या सुख में रहूँ लेकिन मैं हमेशा ही श्रीकृष्ण अपनी इच्छानुसार जगत् के सभी जीवों पर अपनी दया बिखेरते हैं। मेरी सुख-सुविशाएँ व मेरे कर्म-भोग सब श्रीकृष्ण की इच्छा से ही होने है, यहाँ तक कि मेरा वैराग्य भी श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार होगा।

शरणागति होने से ही आत्मनिवेदन होता है

सरल भाव से जब उपराक्त शरणागति के भाव किसी के हृदय में होते हैं, तब उसे आत्मनिवेदन कहा जाता है।

शरणागति के बिना हरिनाम करते हुए जो होता है

छ: प्रकार की शरणागति जिसमें नहीं होती, वह तो अधम है। 'मैं', 'मेरा' के दोष में ही उस बेचारे की बुद्धि उलझी होती है। ऐसी अवस्था में वह अपने-आप को कर्त्ता मानता हुआ कहता है कि ये संसार मेरा है। कर्मों के दु:ख हों या सुख ये सब मेरे ही भोग हैं। मैं अपना रक्षक व पालक हूँ, ये मेरी पतनी, मेरा भाई, मेरी लड़की व मेरे लड़के हैं। मैं रूपया कमाता हूँ, मेरी कोशिशों से ही ये सब अच्छे-अच्छे सब काम हो रहे रहे हैं। ठाकुर श्रीहरिदास जी कहते हैं कि भगवान के विमुख व्यक्ति की शरीर में 'मैं' तथा शरीर से सम्बंधित व्यक्ति व वस्तुओं में 'मेरी' बुद्धि होने से वह अपने दिमाग को बड़ा समझता है। वह सोचता है कि मेरे दिमाग के कारण ही दुनियाँ में शिल्प कला व

विज्ञान आदि इतनी उन्नति कर रहे हैं। इसी अभिमान में वह दुष्ट व्यक्ति भगवान की शक्तियों को भी स्वीकार नहीं करता। हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी वह उसमें विश्वास नहीं करता। हाँ, लोकाचार की दृष्टि से वह कभी-कभी देखा-देखी कृष्ण नाम का भी उच्चारण कर लेता है। अक्सर धर्मध्वजी, दुष्ट प्रकृति के लोग ऐसा करते हैं। कृष्ण-नाम उच्चारण करते हुए भी उनकी कृष्ण-नाम में प्रीति नहीं होती। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि 'हेला' से हरिनाम का उच्चारण करने से अनायास ही मुख से श्रीकृष्ण नाम निकल जाय तो उसे कुछ-न-कुछ पुण्य अवश्य मिलता है परन्तु भगवद्-प्रेम नहीं मिलता।

इसका मूल कारण क्या है

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी हरिनाम में विश्वास न होनो व हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी नाशवान शरीर में 'मैं' और 'मेरे पन' को बुद्धि में बनाये रखना, जो दसवाँ नामापराध है, ऐसा अपराध माया में फँसे होने के कारण ही होता है।

इस दोष को त्यागने का उपाय

अत: हमें एक ऐसे निष्किंचन भक्त की खोज करनी होगी। जिसके अन्दर दुनियाँ के भोगों की ज़रा सी भी कामना न हो तथा जो हर समय विषय भोगों को छोड़कर नाम-संकीर्तन करता रहता हो। ऐसा निष्किंचन भक्त जब मिल जाये तब साधक को उसकी संगति में रहना होगा तथा अपनी विषय-भावनाओं को छोड़कर उसकी सेवा करनी होगी। ऐसा करने से धीरे-धीरे साधक के अन्दर हरिनाम में रूचि होने वाले भावों का संचार होगा तथा मैं-मेरेपन को छोड़कर वह माया से पार हो जाएगा। हरिनाम की महिमा को सुनकार "मैं" और "मेरा" के भावों को छोड़कर हरिनाम के शरणागत होना ही भक्त का स्वभाव है। जो भक्त हरिनाम के शरणागत रहकर श्रीकृष्णनाम करते हैं, वे श्रीकृष्ण-प्रेम रूपी महाधन को प्राप्त कर लेते हैं।

दस-अपराध से रहित व्यक्ति के लक्षण

अतएव, बड़े यत्न के साथ साधु-निन्दा को छोड़कर, शुद्ध-मन से भगवान के श्रेष्ठत्त्व को समझें हृदय से ये मानें कि भगवान विष्णु ही परम तत्त्व हैं। जो हरिनाम के गुरु हैं, जो हरिनाम की महिमा बखान करने वाले शास्त्र है, उन्हें सर्वोत्त्म समझें तथा भगवान के ये नामत विशुद्ध हैं व चिन्मय हैं, इसे हृदय से मानें। साधकों को चाहिए कि वे पापों की लालसा व पापों के कारण को यत्न के साथ छोड़े तथा जो श्रद्धालु लोग हैं, उनके बीच में शुद्ध-हरिनाम का प्रचार करें। शरणागत-भक्त के इलावा सभी शुभ-कर्मों से अपने-आप को हटाकर तथा प्रमाद को छोड़कर हर समय भगवान का स्मरण करता रहता है।

अपराध रहित हरिनाम करने से थोड़े दिनों में ही भावों का उदय हो जाता है

नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि भगवान के शरणागत होकर जो हर समय हरिनाम करता रहता है, इस सारे त्रिभुवन में वह ही धन्य है तथा ऐसा हरिनाम करने वाला ही भाग्यवान है। सचमुच ऐसे व्यक्ति को ही गुणों की खान कहा जाएगा तथा ऐसा व्यक्ति ही श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने के योग्य है। हरिनाम करते-करते ऐसे साधक के हृदय में थोड़े दिनों में ही भगवान के भाव

उदित होने लगते हैं तथा उसके कुछ समय बाद उसे श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

उन्नति का क्रय

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि शरणागत-भाव से निरन्तर हरिनाम करने वाले साधक अक्सर थोड़े दिनों के बाद ही भगवान श्रीकृष्ण की इच्छा से भाव की स्थिति से भगवद्-प्रेम की स्थिति में पहुँच जाते हैं। तमाम शास्त्रों के अनुसार भगवद्-प्रेम की स्थिति को प्राप्त करना ही सर्वसिद्धि है। हे प्रभु! आपने ही तो कहा था कि जो भक्त अपराध रहित होकर हरिनाम करेगा, वही प्रेम-धन को प्राप्त करेगा।

व्यतिरेक भाव से इसकी चिन्ता

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि यदि कोई अपराधों को न छोड़कर हरिनाम करता भी है तो हज़ारों साधन करने पर भी वह भगवान की प्रेम-भक्ति को प्राप्त नहीं कर पाता है। ज्ञानी को ज्ञान से मुक्ति एवं कर्मी को कर्मों से भोगों की प्राप्ति तो हो जाती है, परन्तु सुदुर्लभा-भक्ति केवल शुद्ध-साधुओं के आनुगत्य में निर्मल भाव से रह करके हरिनाम की साधना करने से ही प्राप्त होती है, जो कि जीवों का परम लक्ष्य है। शुद्ध-भक्ति की तुलना में मुक्ति और भोग नगण्य है। साध न की निपुणता के द्वारा अति ही अल्प-समय में एवं अति ही अल्प-साधना द्वारा भक्ति-लता, भक्तों को प्रेम-फल देती है।

भजन-नैपुण्य

दसों अपराधों को छोड़कर हरिनाम करना ही भजन-साधना में निपुणता है।

नाम-अपराध का गूरुत्व

यदि किसी का भक्ति प्राप्त करने का लेभ है तो उसको दस प्रकार के नामापराधों को यत्नपूर्वक छाड़ के हरिनाम करना चाहिये। ऐ-एक अपराध से सतर्क रह करके, चित्त में लिलाप करते हुए, यत्न से इनका तयाग करना चाहिये। हरिनाम प्रभु के चरणों में निवेदन करना चाहिये कि आप कृपा करके मेरे सभी अपराधों को ध्वंस कर दो क्योंकि हरिनाम प्रभु की कृपा होने से ही ये अपराध खत्म होंगे। नाम-प्रभु की कृपा के बिना अन्य किसी भी प्रकार के प्रायश्चित से अपराध श्रय नहीं हो सकते।

नाम-अपराधों को त्यागने का उपाय

भोजन व विश्राम आदि केवल दैहिक कार्यो को छोड़कर बाकी किसी भी काम में समय को व्यर्थ न गँवाकर हरिनाम करते रहने से सारे नामापराध चले जाते हैं क्योंकि निरन्तर हरिनाम करते रहने से अपराध करने का अवसर ही नहीं रहता। यदि कभी अपराध हो भी जाये तो रात-दिन नाम लेते हुए पश्चाताप् करना चाहिये, जिससे अपराध नष्ट हो जाते है और हरिनाम का मुख्य-फल मिलता है। अपराध नष्ट होने से ही शुद्ध-नाम उदित होता है। जो कि भावमय और प्रेममय होता है।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी बड़ी दीनता के साथ भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के चरणों में प्रार्थना करते हुए कहते हैं हे महाप्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा करो, जैसे मैं सदा-सर्वदा इन सभी अपराधों से बचकर शुद्ध नाम के रस में ही मग्न रहूँ।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि मैं नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर की कृपा से ही कौतूहल पूर्वक 'हरिनाम चिन्तामणि' का गान करता हूँ।

चौदहवाँ अध्याय

श्रीगदाधर पंडितजी तथा श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो। श्रीमती जाह्नवा देवी जी के प्राण-स्वरूप— श्रीनित्यानन्दजी, सीतापति श्री अद्धैताचार्य जी की जय हो तथा श्रीवास आदि जितने भी गौर भक्त हैं, सभी की जय हो, जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी को हरिनाम का आचार्य कहा गया है

श्रीमन् महाप्रभु जी ने कहा— मेरे प्रिय भ्क्त हरिदास! आपने जिए प्रकार सभी नामापराधों के तत्त्व को प्रकाशित किया है, उससे कलियुग के सभी जीवों को मंगल की प्राप्ति होगी। इसीलिए तुम नाम तत्त्व के एक प्रतिष्ठित आचार्य हो।

हे महापुरुष! तुम्हारे मुख से नाम-तत्त्व का श्रवण करके मैं ही उल्लासित हो मया हूँ। आप आचरण में आचार्य एवं प्रचार में भी सुनिपुण हो। आप हरिनाम रूपी धन से धनी हो। श्री रामानन्द राय जी ने मुझे रस-तत्त्व की शिक्षा दी और अब आपने मुझे हरिनाम की महिमा सिखाई। अब आप सेवा-अपराधों के बारे में बताइये कि ये कितने प्रकार के होते हैं ताकि उसे सुनकर जीवों के चित्त में भरा अन्धकार खत्म हो।

श्रील हरिदास ठाकुर बोले— महाप्रभु! आप एक ऐसे विषय पर मुझसे जिज्ञासा कर रहे हैं जिसे केवल सेवक लोग ही जानते हैं। मैं तो हर समय श्रीहरिनाम के आश्रय में रहता हूँ, इसीलिए इस विषय के बारे में मैं क्या बोलूँ, मुझे समझ नहीं आ रहा। परन्तु फिर भी आपकी आज्ञा का मैं उल्लघंन नहीं कर सकता। इसलिए आप मुझसे जो बुलवायेंगे, मैं उसी को विस्तार से बोलूँगा।

सेवा-अपराधों की संख्या

हे गुणमणि गौरहरि जी! शास्त्र के अनुसार सेवा अपराध अनन्त प्रकार के होते हैं और यह सभी श्रीविग्रह से ही सम्बन्धित होते हैं। किसी-किसी शास्त्र मे 32 प्रकार के और किसी-किसी शास्त्र में 32 प्रकार के और किसी-किसी शास्त्र में 50 प्रकार के सेवापराधों का वर्णन है।

सेवा-अपराधों के चार विभाग

बुद्धिमान व्यक्ति शास्त्रो की सहायता द्वारा इन सभी सेवा-अपराधों को चार भागों में विभाजित करते हैं।

1. श्रीमूर्ति सेवक निष्ठ अर्थात् जो मूर्ति की सेवा करते हैं, उनके सम्बन्ध में अपराध।
2. श्रीमूर्ति स्थापक निष्ठ अर्थात् जो मूर्ति की स्थापना करते हैं, उनके सम्बन्ध में कुछ अपराध।
3. श्रीमूर्ति दर्शक निष्ठ अर्थात् जो श्रीमूर्ति के दर्शन करने जाते हैं, उनके कुछ अपराध।
4. सर्व निष्ठ अपराध अर्थात् इन सबके लिए कई तरह के अपराध।

सेवा-अपराधों के प्रकार

पादुका या चप्पल इत्यादि पहनकर मन्दिर में कोई जाये, किसी वाहन में चढ़कर मन्दिर के सामने जाये, नंगे बदन मन्दिर में जाये, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी आदि उत्सव न मनाये, मन्दिर के सामने

जाकर भी भगवान को प्रणाम न करे, जूठे मुँह या अपवित्र अवस्था में भगवान की वन्दना करे, एक हाथ से भगवान को प्रणाम करे, भगवान की ओर पीठ करके घूम जाये, भगवान की ओर पैर पसारे, भगवान से ऊँचे आचन पर बैठे, भगवान के खुल मन्दिर के आगे सोये या भोजन करे, भगवान के आगे झूठ बोले, ज़ोर से चिल्लाए या गप्पें मारे, भगवान के आगे किसी को प्रणाम करे या किसी को आशीर्वाद दे, भगवान के मन्दिर के आगे झगड़ा करे, भगवान के आगे उनकी भक्ति के विरूद्ध कार्य करे या रोये, क्रूर भाषा का प्रयोग करे, दूसरों की निन्दा करे, भगवान के मन्दिर में कम्बल ओढ़ कर जाये, भागवान के आगे दूसरों की तारीफ करे, भगवान के आगे अश्लील बातें या हरकतें करे अथवा अधोवायु छोड़े, समर्थ होते हुए भी भगवान की सेवा में कंजूसी करे, भगवान को भोग लगाये बगैर द्रव्य खा जाये, मौसम के अनुसार फल व सब्जियाँ भगवान के भोग में न दे, किसी ने पहले खा लिया है और उसका बाकी बचा हिस्सा कोई भगवान के भोग में लगाये। भगवान के मन्दिर के सामने इस प्रकार बैठे कि उसकी पीठ भगवान की ओर हो, भगवान के आगे किसी और का सम्मान या पूजन करे, गुरु की महिमा न बोलकर अपनी तारीफ करना तथा भगवान के आगे किसी देवता की निन्दा करना— इस प्रकार 32 प्रकार के सेवा-अपराधों के बारे में महापुराण में वर्णन किया गया है।

दूसरे शास्त्रों के अनुसार सेवा–अपराधों का वर्णन

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभो! अन्यान्य शास्त्रों भी कुछ और सेवा-अपराधों के बारे में कहा गया है जिन्हें मैं आपकी इच्छानुसार संक्षेप वर्णन करूँगो, सेवा-अपराध निम्न प्रकार से हैं—

धनी-विषयी का दिया हुआ भोजन करना, अन्धेने में ही मन्दिर में प्रवेश करके भगवान के विग्रह को स्पर्श करना, शास्त्रों में दी गयी विधियों को छोड़कर भगवान को भोग व वस्त्रादि निवेदन करना, घन्टा व ताली इत्यादि बजाये बगैर मन्दिर का दरवाजा खोलना, कुत्ते की नज़रों में पड़ भेजन को भोग लगाना, भगवान का अर्चन करते हुए बिना किसी कारण के बोलना, पूजा करते हुए बीच में ही उठकर मन्दिर से बाहर जाना, भगवान को माला दिये बगैर उनकी पूजा करना, सुगन्ध रहित फूलों के द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा करना, बिना नहाये श्रीकृष्ण की पूजा करना, स्त्री संभोग व रज:स्वला स्त्री का स्पर्श करके बिना नहाये मन्दिर में पूजा करना, शव को देखने, स्पर्श करने या शमशान घाट से वापस लौटने के बाद भगवाना की पूजा करना, भगवान के सामने अधोवायू छोड़ना अटपटे कपड़े भगवान की सेवा-पूजा करना, गुस्से में या पेट में खाना पूरा हज़म न हुआ हो अकावा पान चबाते हुए मन्दिर में पूजा के लिए जाना, अपनी तेल मालिश करके सीधे मन्दिर में जाकर विग्रह को स्पर्श करना, अरंड के फूलों से भगवान का अर्चन करना, आसुरिक काल जैसे आधी रात में अथवा ज़मीन में बिना आसन के बैठकर भगवान की पूजा करना, भगवान कोशयन देते समय बायें हाथ से उन्हें स्पर्श करना, बासी फूलों से या माँग कर लाये गये फूलों से भगवान का अर्चन करना, पूजा मरते हुए डींगें हाँकना अथवा अनुचित बातें बोलना, त्रिपुण्ड्र लगाकर भगवान श्रीकृष्ण की सेवा करना, बिना पैर धोये ही मन्दिर में पूजा करने के लिए जाना, अवैष्णव के हाथों से बनाये भोजन को भगवान के आगे उन्हें निवेदन करना, अवैष्णवों को दिखा-दिखाकर भगवान का अर्चन करना, भगवान की पूजा-अर्चना किये बगैर ही कपाली इत्यादि तान्त्रिकों का दर्शन करना, नाखुन द्वारा स्पर्श हुए जल

के द्वारा भगवान की पूजा करना, पसीने की बूँदों से मिले पानी से भगवान का अर्चन करना, भगवान श्रीकृष्ण की कसम खाना, भगवान को अर्पित माला व तुलसी इत्यादि को लाँघना— इन सब कार्यों को करने से सेवा-अपराध होते हैं। भगवान की सेवा करने वाल साधक को चाहिए कि वह इन सबसे सावधान होकर रहे ताकि उसके द्वारा की जाने वाली भगवान की सेवा में कोई बाधा न हो।

सेवक को सेवा-अपराधों का त्याग करना चाहिए

श्रीमूर्ति के सम्बन्ध में जिनका भजन और पूजन है, उनको सेवापराधों का परित्याग करना चाहिये। वैष्णव सदा ही नामापराध एवं सेवापराध का परित्याग करके श्रीकृष्ण सेवा का आस्वादन करते हैं। सेवापराधों मे, जिसकी जिस प्रकार की सेवा है, वह उसी प्रकार की सेवाओं में होने वाले अपराधों पर विशेष ध्यान रखे व उतने बचे परन्तु नाम-अपराधों को त्यागना सभी वैष्णवों के लिये हमेशा के लिए अति आवश्यक है।

भाव-सेवा करने वाले साधक का सेवापराध न के बराबर होता है

जो साधक श्रीमूर्ति के विरह में एकान्त में रोते-रोते सदा-सर्वदा भाव से भजन करते हैं, ये नामापराध तो उनके लिये भी वर्जनीय हैं। ये दस प्रकार के नामापराध ही सारे क्लेशों का आधार हैं। नामापराध नष्ट होने से ही भावमय सेवा हो सकती है। भावमय सेवा करने से ही सेवापराध नहीं होते।

नाम-स्मरण वाल को ही भाव सेवा करनी चाहिए

हे प्रभु! हरिनाम करते-करते आपकी कृपा से जब जीव का भाग्य उदित होता है, तभी नाम सेवा से उसकी भाव सेवा उदित होती है। भक्ति के जितने भी प्रकार के साधन हैं, सब अन्त में नाम में प्रेम प्रदान करते हैं, इसलिए नाम साधक हरिनाम करता रहता है और उसी में मग्न रहता हैं। हरिनाम में निष्ठा रखने वाला साधक दूसरे प्रकार की किसी भी साधना को नहीं करता है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैंकि नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की आज्ञा के प्रभाव से ही मैं, अकिंचन “हरिनाम-चिन्तामणि” का कीर्तन कर रहा हूँ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

भजन-प्रणाली

श्रीगदाधर पंडित जी, श्रीगौरांग महाप्रभु जी व श्रीमती जाह्नवा देवी जी के प्राणस्वरूप श्रीनित्यानन्द जी की जय हो, श्रीसीतापति, श्रीअद्वैताचार्य जी तथा श्रीवास आदि जितने भी महाप्रभु जी के भक्त हैं, सभी की जय हो, जय हो। अन्य सभी पथों का परित्याग करके जो हरिनाम का जप या कीर्तन करता है, उस भाग्यवान् पुरुष की जय हो।

श्रीमन् महाप्रभु बोले— हे हरिदास! आपने इस पृथ्वी पर अपनी भक्ति के बल से दिव्य-ज्ञान

को प्राप्त किया है। चारों वद आपकी जिह्वा पर नृतय करते हैं तथा मैं आपकी कथा में सारे सुसिद्धान्तों को अनुभव करता हूँ।

नाम रस की जिज्ञासा

महाप्रभु जी बोले— हे हरिदास! अब मुझे यह बताईये कि हरि नाम रस कितने प्रकार के हैं और अधिकार के अनुसार साधकों को किस प्रकार प्राप्त होंगे हरिनाम के प्रेम में विभोर होकर नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी निवेदन करते हुए श्रीमन् महाप्रभु जी से कहते हैं कि हे गौरहतर! आपकी प्रेरणा के बल से मैं इसका वर्णन करूँगा।

शुद्ध तत्त्व और पर-तत्त्व के रूप से जो वस्तु सिद्ध है, वो रस के नाम से वेदों में प्रसिद्ध है। वह रस अखंड है, परब्रह्म तत्त्व है। ये चरम वस्तु असीम आनन्द का समुद्र है। शक्ति और शक्तिमान यप से वो परतत्त्व में विद्यमान है। शक्ति और शक्तिमान के रूप से, इसमें काई भेद नहीं है, केतल दर्शन में भेद दिखाई देता है। शक्तिमान अदृश्य सा है जबकि शक्ति उसको प्रकाशित करती है। तीनों प्रकार की शक्ति (चित्, जीव और माया शक्ति) ही विश्व का प्रकाशित करती है।

चित् शक्ति के द्वारा वस्तु का प्रकाश

चित् शक्ति के स्वरूप में वस्तु का रूप, वस्तु का नाम, वस्तु का धाम, वस्तु की क्रिया व वस्तु का स्वरूप आदि प्रकाशित होते हैं। श्रीकृष्ण ही वह परम वस्तु हैं और उनका श्याम वर्ण है। गोलोक, मथुरा, वुनदावन इत्यादि श्रीकृष्ण के धाम है, जहाँ वह अपनी लीला प्रकट करते हैं। श्रीकृष्ण के नाम, धाम, रूप, गुण, लीला इत्यादि जो भी हैं, सबके सब अखंड और अद्वय ज्ञान के अन्तर्गत हैं। श्रीकृष्ण में जितनी भी विचित्रता है ये सब परा शक्ति के द्वारा ही की गई है। श्रीकृष्ण धर्मी हैं, जबकि श्रीकृष्ण की पराशक्ति ही उनका नित्य-धर्म है। धर्म और धर्मी में भेद नहीं है। दानों ही अखंड और अद्वय हैं। ये दोनों अभेद होते हुए भी विचित्र विशेषता के द्वारा इनमें भेद दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की विशेषता केवल चिद् जगत में ही दिखाई देती है।

माया-शक्ति का स्वरूप

जो छाया-शक्ति श्रीकृष्ण की इच्छा से इस सारे विश्व का सृजन करती है, उस शक्ति को माया-शक्ति के नाम से जाना जाता है।

जीव शक्ति

भेदाभेदमयी जीव-शक्ति अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण जी की तटस्था-शक्ति श्रीकृष्ण की सेवा के उद्देश्य से जीवों को प्रकाशित करती है।

दो प्रकार की दशा वाले जीव

जीव दो प्रकार के हैं— नित्य बद्ध और नित्य-मुक्त। नित्य मुक्त जीवों का नित्य ही कृष्ण सेवा में अधिकार होता है जबकि नित्य बद्ध जीव माया के द्वारा संसार में फंस जाते हैं, और उनमें भी बर्हिमुखी और अंतर्मुखी भेद से दो प्रकार का विभाग है।

जो अंर्तमुखी जीव हैं, वो साधु-संग के द्वारा कृष्ण-नाम को प्राप्त करते हैं और श्रीकृष्ण नाम के प्रभाव से श्रीकृष्ण जी के धाम को जाते हैं।

रस और रस का स्वरूप

भगवान श्रीहरि ही अखंड रस के भण्डार हैं और उस रस रूपी फूल की कलि हरिनाम थोड़ी सी प्रस्फुटित हुई कलि का रूप अति मनोहर होता है। गोलोक-वृन्दावन में यही रूप श्यामसुन्दर के रूप में विद्यमान है।

प्रभु के चौंसठ गुण उस कलि की सुगन्ध हैं, वे गुण ही भगवान के नाम के तत्त्व को पूरे जगत् में प्रकाशित करते हैं।

श्रीकृष्ण की लीला पूरी तरह से खिले हुए फूल के समान है। ये भगवद् लीला प्रकृति से परे है, नित्य है और आठों प्रहर चलती है।

भक्ति का स्वरूप

जीवों पर हरिनाम की कृपा होने से यह कृपा संचित-शक्ति और ह्लादिनी शक्ति के समावेश के भक्ति के रूप में जीव के हृदय में प्रवेश करती है।

भक्ति-क्रिया

वही सर्वेश्वरी शक्ति अर्थात् भक्ति जीवों के हृदय में आविर्भूत होकर श्रीकृष्ण नाम के रसों की सारी सामग्री को प्रकाशित करती है। जीव भक्ति के प्रभाव से अपने चिन्मय-स्वरूप को प्राप्त करता है और फिर उसी शक्ति के द्वारा ही उसमें रस प्रकाशित होता है।

रस के विभाव-आलम्बन

रस के विभाव आलम्बन के विषय तो परम धनस्वरूप श्रीकृष्ण हैं एवं आश्रय उनके भक्त हैं। जब भक्त सदा ही हरि नाम लेता है तब हरि नाम की कृपा से वह भगवान के रूप, गुण, लीला आदि का आस्वादन करता है।

रस का विभाव उद्दीपन

श्रीकृष्ण के रूप, गुण इत्यादि सभी उद्दीपन हैं। ये आलम्बन व उद्दीपन दोनों विभाव के अन्तर्गत हैं।

विभाव से अनुभाव प्रकट होता है

विभाव सम्पूर्ण होने से अनुभाव होता है। श्रीकृष्ण शुद्ध प्रेम के सभी विकार अनुभाव कहलाते हैं। प्रेम के ये सभी विकार शुद्धमय ही होते हैं।

जब संचारी भाव और सात्विक भाव के मिलन में विभाव काम करता है तब स्थायी भाव ही रस होता है

सभी शास्त्रों में कहा गया है कि संचारी भाव व सात्विक भाव के क्रम से उदित होने के बाद जो स्थायी भाव होता है, वही रस कहलाता है।

रस पान का क्रम

श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि मैं तो इस दिव्य रस को ही सभी का सार व सभी सिद्धियों का सार समझता हूँ— सभी शास्त्र कहते हैं कि ये रस ही जीवों का परम-पुरुषार्थ है। भक्ति के उन्मुख जीव शुद्ध गुरु की कृपा से श्रीराधा-कृष्ण जी के युगल-मन्त्र

को अर्थात् "हरे-कृष्ण" महामन्त्र को सौभाग्य से प्राप्त करता हैं तथा परम आदर के साथ तुलसी माला पर संख्या पूर्वक नाम स्मरण कीर्तन आदि करता है। एक ग्रन्थि अर्थात् 16 माला पच्चीस हज़ार हरिनाम से आरम्भ करके धीरे-धीरे तीन लाख माला का नाम जप करें, इससे आपके मन की इच्छा पूर्ण हो जाएगी।

माला में जो भी निशिचित संख्या रखकर आप हरिनाम करते हैं उसमें से कुछ नाम आप थोड़ा जोर-जोर से उच्चारण करते हुए करें। इससे सारी इन्द्रियों में स्फूर्ति होगी तथा आनन्द से नृत्य करने को मन करेगा और तुम नाचोगे। भक्ति के नौ प्रकार के अंग हरि नाम का ही आश्रय करते हैं। फिर भी इनमें कीर्तन और स्मरण सर्वश्रेष्ठ हैं।

अर्चन-मार्ग और श्रवण-कीर्तन के अधिकार भेद से क्रिया में भेद

अर्चन-मार्ग में जिसकी गाढ़ रुचि है, उसके उसी में ही श्रवण-कीर्तन की सिद्धि मिल जायेमी। हरिनाम में जिसकी ऐकान्तिकी प्रीति होगी, वह केवल भगवान की कथा श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही करेगा।

नाम श्रवण, कीर्तन और स्मरण में क्रम

हरिनाम का जप करने से अपने-आप ही बड़ी आसानी से भक्ति के अन्य अंग जैसे— सेवा प्रणाम, दास्य, साख्य, आत्मनिवेदन आदि का पालन होजाता है। नाम और नामी एक तत्त्व हैं, ऐसा विश्वास करके दस नामापराधों को त्यागकर जो साधक निर्जन स्थान में बैठ कर के भजन करता है, उस पर हरिनाम प्रभु दया-परवश होकर अपने श्यामसुन्दर रूप में उसके हृदय में प्रकाशित हो जाते हैं। जब साधना में नाम और रूप एक ही ऐसा अनुभव जो जाता है, तब नाम लेने से ही हर समय भगवान का रूप भी चित्त में आ जाता है। यही नहीं, थोड़े दिन बाद जब भगवान का नाम, भगवान का रूप और भगवान के गुण ये एक ही हैं, ऐसा अनुभव में आ जाता है, तब हरिनाम उच्चारण करने के साथ-साथ भगवान के नाम, रूप व गुण एक साथ भक्त के चित्त में आ जाते हैं।

मन्त्र-ध्यानमयी— उपासना

मन्त्र-ध्यानमयी इस हरिनाम की उपासना में साधक प्राथमिक धारा के रूप में हरिनाम का ही विशेष रूप से चिन्तन करता है। स्मरण के समय योगपीठ में कल्पवृक्ष क नीचे ब्रज के गोप एवं गोपियों के बीच में श्रीकृष्ण का कौतूहल पूर्वक दर्शन करता है। तभी उसके शरीर में सारे सात्विक भाव प्रकट होते हैं और वो भक्त भजन के आनन्द से पुलकित हो जाता है। धीरे-धीरे जब हरिनाम अपनी सुगन्ध बिखेरता है तब भक्त उसमें प्रफुल्लित हो जाता है और तभी अष्टकालीय श्रीकृष्ण लीला उसके चित्त में उदित हो जाती है।

अपने रस की उपासना

अपने रस की उपासना जब उदित होगी तब साधक भगवान नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के धाम में उनका दर्शन करता है, एवं सद्‌गुरु की कृपा से अपनी सिद्ध देह से सखियों के साथ भगवान की लीला में प्रवेश करता है। महाभावस्वरूपिणी जो राधा जी हैं, उनके अनुगत में सदा-सर्वदा भक्ति करता

है। उस लीला में वह रसित-भक्त श्रीकृष्ण के मधुर रस की जो भक्त हैं—— गोपियाँ, उनकी आज्ञानुसार भगवान श्रीराधा-कृष्ण जी के युगल रूप की सेवा करता है और महाप्रम में मग्न हो जाता है।

हे गौरहरि! आपकी कृपा से इस साधना में भजन-साधन और भजन की सिद्धि वाली स्थिति काफी नजदीक हो जाती हैअर्थात् दोनों की दूरियाँ काफी कम हो जाती हैं। यहीं नहीं, आपकी कृपा से साधक का सूक्ष्म शरीर खत्म हो जाता है और उसे स्वरूप-सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

इससे श्रेष्ठ अवस्था का वण्रन नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है।

नामाचार्य श्रीहरिदास इाकुर जी कहते हैं कि इससे आगे तो मुझसे बोला नहीं जा रहा है। इससे आगे तो मुझसे बोला नहीं जा रहा है। इससे आगे की स्थिति का तो आपकी कृपा से मैं अनुभव ही कर सकता हूँ। हे गौरहरि! ये ही सर्वश्रेष्ठ साधना व उज्जवल रस है; इससे बिल्कुल निश्चित है—— श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति।

साधना के ग्यारह भाव

उज्जवल-रस की साधना में ग्यारह प्रकार के भाव होते हैं जो कि बड़े ही चमत्कारिक होते हैं। वे हैं—— सम्बन्ध, उम्र, नाम, रूप, यूथ प्रवेश, वेश, आज्ञा, वासस्थान, सेवा, पराकाष्ठा तथा पाल्य दासी भाव।

भाव की साधना में पांच दशायें होती हैं——

सम्पूर्ण साधना में तो उपराक्त ग्यारह भाव होते हैं जबकि भाव की साधना करते समय साध क के जीवन में निम्नलिखित पाँच दशायें उदित होती हैं—— श्रवण दशा, वरण दशा, स्मरण दशा, आपन दशा और सम्पत्ति दशा।

प्रथम श्रवण-दशा

भाव-मार्ग में अपने से श्रेष्ठ जो शुद्ध भावुक महापुरुष होता है, वही गुरु कहलाता है। उनके मुख से भाव-तत्त्व के बारें में श्रवण करने से श्रवण-दशा की प्राप्ति होती है।

भाव-तत्त्व

ये भाव-तत्त्व दो प्रकार का होता है। पहला तो अपना सम्बन्ध, उम्र तथा नामादि एकादश भाव और दूसरा श्रीकृष्ण की लीला ये दोनों ही भाव-तत्व हैं।

क्रम से वरण-दशा की प्राप्ति

भगवान श्री राधा-कृष्ण जी जो अष्टकालीय लीला करते हैं, उन दिव्य अष्ट कालीय लीलाओं को श्रवण करके उन लीलाओं के प्रति लोभ उत्पन्न होता है। लोभ होने के कारण साधक अपने गुरुदेव जी से लीला विषयक जिज्ञासा करता है। साधक अपने गुरु देव जी से कहता है, हे भक्त-प्रवर गुरुदेव!

तब निष्कपट साधक पर कृपा करके उसके गुरुदेव उसकी साधना के अन्तर्गत आये ग्यारह भावों का तथा साध्यावास्था की अष्टकालीन-लीला का परस्पर मिलन करवा देंगे। यह नहीं इस प्रकार वे अपने उस योग्य शिष्य को भगवान श्रीराधा-श्रीकृष्ण जी की लीला में प्रवेश करने के लिए आदेश

दे देंगे।

आगे नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि अपने गुरुदेव जी द्वारा दिये सिद्ध-भाव को शुद्ध रूप से श्रवण करके, उस भाव को अपने चित्त में बिठा लेना।

अपनी रुचि गुरुदेव जी को बतानी चाहिए

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि वरण-काल के समय अर्थात् जब शिष्य को गुरु जी द्वारा ये सिद्ध भाव दिया जा रहा हो, उस समय शिष्य को चाहिए कि भली-भाँति विचार करके सरल भाव से अपनी रुचि भी गुरु पादपद्मों में निवेदन करे। शिष्य अपने गुरुदेव जी से कहे कि हे गुरुदेव! आपने मुझ पर कृपा करके मुझे मेरा जो परिचय दिया है, उसमें मेरी पूरी श्रद्धा व प्रीति है परन्तु स्वाभाविक रूप से मेरी इस भाव में रुचि है। अतएव, यदि मैं ठीक हूँ तो आप मुझे आज्ञा दें। आपकी आज्ञा ही मुझे शिरोधार्य होगी।

दूसरी रुचि होने से गुरु दूसरा भाव देंगे

वह भाव हो गुरु द्वारा प्रदान किया गया है, यदि उसमें आपकी रुचि नहीं है, तब निष्कपट होकर के अपनी रुचि को गुरु के समीप निवेदन करना चाहिए। गुरुदेव विचार करके आपको दूसरा भाव देंगे और उसी भाव में रुचि होने से तब साधक अपने स्वरूप को जलदी प्राप्त करेगा।

अपना सिद्ध भाव गुरु को बताना चाहिये

इस प्रकार गुरु-शिष्य-संवाद होने के उपरान्त जब अपना सिद्ध-भाव स्थिर हो जाये, तब शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरुदेव जी के चरणों में पड़ करके बड़ी दीनता के साथ विनती करते हुएउ उस ीाव की सिद्धि को माँगे। गुरुदेव शिष्य का ऐसा शरणागत भाव देखकर कृपा करके आदेश देंगे और तब शिष्य उस आदेश का पालन करते हुए उस भाव में प्रवेश करेगा।

दृढ़-वरण

नामाचार्य श्रीहरिदस ठाकुर जी कहते हैं कि ऐसे समय में अपने सद्गंरु के चरणों में पड़कर शिष्य कहेगा कि हे गुरुदेव! आपके द्वारा दिये हुए भाव को मैं वरण करता हूँ और अब इस भाव को मैं कभी भी नहीं छोड़ूँगा। ये भाव जीवन और मरण दोनों समय में ही मेरे साथ रहेगा।

भजन में रुकावट डालने वाले विचार

अपने सिद्ध ग्यारह भाव में व्रती हो के सुदृढ़-चित्त से अपने भावों को याद करना चाहिये। स्मरण में एक बात बड़ी अच्छी है, वह ये कि साधक अपनी योग्यता के अनुसार निरन्तर स्मरण कर सकता है। हाँ, यदि अपनी योग्यता से रहित स्मरण होता है, तब कई युग साधना करने पर भी कभी सिद्धि नहीं मिलती है।

आपन-दशा

अपनी साधना में जब साधक स्मरण में दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है तब जल्दी ही साधक आपन-दशा को प्राप्त कर लेता है। अपने शुद्ध-भाव में जब नित्य-स्मृति होती चली जाती है, तब शीघ्र ही साधक की दुनियावी चीज़ों में जो बद्धमति है, वह दूर जो जाती है।

बद्ध-जीव जिस क्रम से भाव प्राप्त करते हैं

दुनियावी-भावों से ग्रसित बद्ध-जीब अपने सिद्ध स्वरूप को भूलकर दुनियावी-अभिमान के द्वारा अपने इस जड़ीय शरीर में ही मत्त रहता है। ऐसे समय में श्री कृष्ण लीला श्रवण करके उसके चित्त में अपना

सिद्ध-धन(कृष्ण-प्रेम) पाने का लोभ जागृत होता है। इसी लोभ में वह हमेशा भाव तत्व का स्मरण करता है। साधक द्वारा भावों का स्मरण जितना बढ़ता है, उतना ही भ्रम दूर होता चला जाता है।

स्मरण – दशा

स्मरण भी वैधी और रागानुगा भेद से दो प्रकार का होता है। रागानुगा-स्मरण तो शास्त्र की युक्ति से परे है। केवल श्रीकृष्ण के माधुर्य से आकृष्ट होकर के साधक भगवान का स्मरण करता है और जल्दी ही अपने भाव के अनुसार आपन-दशा को प्राप्त कर लेता है।

विधि – मार्ग में भक्त की उन्नति के क्रम

विधि-मार्ग के जो भक्त हैं, स्मरण के समय शास्त्रों की अनुकूल-युक्तियों का विचार करते हैं परन्तु जब भाव का आविर्भाव होता है तो वह शास्त्र-युक्तियों को झंझट समझकर छोड़ देते है। श्रद्धा, रुचि, आसक्ति आदि के क्रम से जो भाव हैं, वह ही आपन-दशा के समय में आविर्भूत होते हैं।

आपन – दशा में रागानुगा और विधि – मार्ग के भक्तों में कोई भेद नहीं है

स्मृति ओर वेदों के मत के अनुसार आपन-दशा में रागानुगा-भक्त और विधि मार्ग पर चलने वाले भक्त में कोई भेद नहीं होता है।

पांच प्रकार के स्मरण

स्मरण, धारणा, ध्यान, अनुस्मृति और समाधि इस प्रकार स्मरण पाँच प्रकार के हैं।

भावापन्न दशा के उदय का समय

जब समाधि में स्वरूप-स्मृति होती है, तब साधक के अन्दर भाव की आपन-दशा प्रकट होती है।

आपन – भाव की दशा में जैसी अवस्था होती है

उस मसय अपने सिद्ध देह के अभिमान में स्थित होने के कारण जड़-देह का अभिमान नष्ट हो जाता है। तब वह अपने सिद्ध-स्वरूप में सदा ही ब्रज-वास करता है तथा इस दशा में अपने स्वरूप के द्वारा वृन्दावन का दर्शन करता है।

आपन – अवस्था में स्वरूप सिद्धि होती है

आपन-अवस्था में भाग्यवान् व्यक्ति भ्जन करते-करते स्वरूप-सिद्धि को प्राप्त करता है। इसी अवस्था में सबसे बड़ा कार्य ये होता है कि भगवान की इच्छा से उसकी सूक्ष्म-देह नष्ट हो जाती है।

साधन – सिद्धि का फल

इसी अवस्था में साधन-सिद्ध होकर वह नित्य सिद्ध-भक्तों के साथ समता प्राप्त करके निरन्तर श्रीकृष्ण की सेवा करता रहता है।

संक्षेप में क्रम – परिचय

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि भक्ति-उन्मुख व्यक्ति को चाहिए कि वह साधु-संग में क्रम को तोड़े बगैर एकान्त में निष्कपट भाव से हरिनाम करता रहे। ऐसा करने से धीरे-धीरे थोड़े ही समय में उसे सर्वसिद्धि की प्रार्पिति हो जायेगी। हाँ, कुसंग को छोड़ कर साधु-संग में रहने से ही यह फल प्राप्त होता है।

नाम का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिये तीन उपाय

साधु-संग, सु-निर्जन स्थान तथा अपना दृढ़ भाव— इन तीनों के प्रभाव से साधक सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी अपनी स्व0भाविक दीनता के साथ कहते हैं कि— हे गौरांग महाप्रभु जी! मेरी प्रार्थना है कि मैं तो दीन-हीन हूँ, मेरी तो समझ भी कम है, क्या बताऊँ मेरा मन तो हमेशा ही संसारिक विषयों में रमा रहता है, हे गौरहरि! मैं साधु-संग से रहित हूँ और श्रीकृष्ण का भजन नहीं करने के कारण आत्मचोर हूँ आप अपनी अहैतु की कृपा मुझ पर करें ताकि भक्ति रस में मेरी मति हो जाये, इतनी कृपा तो अवश्य करो।

इतना कनि के साथ ही हरिदास जी प्रेम से मूर्छित हो गए और उन्होंने अपनी देह महाप्रभू जी के चरण कमलों में समर्पित कर दी। महाप्रभु जी ने भी प्रेम से गद्‌गद् होकर उनको उठाया और उनका गाढ़ आलिंगन किया एवं अपने दिल की बातें उनसे कहने लगे।

महाप्रभु जी की आज्ञा

श्रीमन् महाप्रभु जी बोले— हे हरिदास! मेरी लीला के संगोपन के बाद जिस समय दुष्ट-प्रकृति के लोग विश्व को अन्धकार से भर देंगे, उस समय आपके ये श्रेष्ठ उपदेश उस समय के साधु-लोगों को रास्ता दिखायेंगे। नामाश्रय करके निष्किंचन-व्यक्ति इस तत्त्व के द्वारा एकान्त में बैठकर श्रीकृष्ण का भजन करेंगे। अपने-अपने भाग्य के बल से जीव भक्ति को प्राप्त करता है, भगवान की भक्ति को प्राप्त करने की शक्ति सबकी नहीं है। सुकृतिवान व्यक्तियों की भक्ति में दृढ़ता हो, इसके लिए मैं युगधर्म-नाम संकीर्तन का प्रचार करने के लिए इस धरातल पर आया हूँ।

हरिदास ठाकुर का नाम प्रचार में सहयोग

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी को कहते हैं कि आप मेरे इस नाम प्रचार रूपी कार्य के सहयोगी हो इसीलिये मैंने आपके मुख से नाम तत्त्व का श्रवण किया है।

भगवान श्रीकृष्ण की कृपा के बल से तमाम अमृत की खान स्वरूप इस 'हरिनाम चिन्तामणि' को जिसने प्राप्त किया है, वह महापुरुष ही कृतार्थ है तथा वह ही सदा पूर्णानन्द में मग्न होकर राग मार्ग से कृष्ण का भजन करता है। अन्त में दीनता के मूल स्रोत व दीनता के व शिक्षक भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कहते हैं कि है हरिदास! आप मुझ जैसे दीन-हीन, अकिंचन को इस अमृत रस का लेश मात्र पिला कर के मेरे आनन्द की वृद्धि करो।

गुरु-परम्परा
श्रीचैतन्य महाप्रभु
श्री दामोदा स्वरूप
श्री सनातन-रूप-रघुनाथ-जीव गोस्वामीगण
श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी
श्री नरोत्तम ठाकुर
श्री विश्वनाथ-चक्रवर्ती
श्री बलदेव विद्याभूषण
श्री जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज
श्री सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुर
श्री गौर किशोर दास बाबाजी महाराज
श्री भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर
(विश्वव्यापी श्री चैतन्य मठ, श्री गौड़ीय मठ एवं गौड़ीय मिगन संगठन के संस्काचार्य)
कृष्ण कृपा श्रीमूर्ति
ऊँ विष्णुपाद अष्टोत्तागत
श्री श्रीमत् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज
(श्री चैतन्य गौड़ीय मठ संस्थान के संस्थापकचार्य)
श्रीश्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज
वर्तमान आचार्य
अबिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ

दिव्य कृष्ण-प्रेम का प्रचार

शुद्धभक्तों के संग में दश नामापराधों का वर्जन करते हुए पवित्र नाम का कीर्तन करना ही सांसारिक कष्टों से छुटकारा पाने एवं परम आनन्द प्राप्ति कर एकमात्र उपाय है।

केवल निष्कपट, पूर्ण-शरणागत जीव ही श्रीकृष्ण एवं उनके अभिन्न-प्रकाश-विग्रह श्री गुरुदेव की कृपा से स्वंय को माया के चंगुल से बचा सकता है।

अपनी पूर्ण सुकृतियों के कारण शुद्ध-भक्त के सम्पर्क में आने पर भी हम उनकी निष्कपट व पूर्णहृदय से शरण नहीं ले सकते। श्रीकृष्ण के विमुख होने के पश्चात जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र से गुजरते हुए हमने जो भौतिक अहंकार प्राप्त किया है उसको छोड़ना बहुत कठिन है।

बद्धजीवों, जिनसे भगवान स्नेह करते हैं, के कल्याण के लिए भगवान इस जगत में अपनी रूचि के आउसंग किनी भी रूप में प्रकट हो सकते हैं।

हमें वेदों में व अन्य ग्रन्थों में परंगत, गुरु-परम्परा से प्राप्त परमेश्वर श्री कृष्ण सम्बन्धी पूर्ण-ज्ञान (नाम, रूप, गुण, लीला व परोकार की अनुभूति) को प्राप्त (श्रेत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरूदेव के पादपद्मों का पूर्ण आशय लेना चाहिए।

जब तक आपको श्रेष्ठ रस का आस्वादन नहीं हो जाता, तब तक इन्द्रियतृप्ति की प्रवृति का नाश नहीं हो सकता। सही परिणाम प्राप्त करना साधक की साधना की तीव्रता पर निर्भर करता है।

इस अमूल्य मानव जन्म की भक्ति तथा मूल्यवान समय को भौतिक कार्यो एवं सांसारिक क्षणिक लाभों के लिए ही लगाना बुद्धिमता नहीं होगी। इस जगत में किए गए कार्य शाश्वत फलदाई नहीं हो सकेंगे।

श्री कृष्ण का भजन करने में कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि वे हमारे अत्यन्त समीप हैं तथा हमारे परमप्रिय है। वे हमारे हृदय में रहते हैं। व हमारी दुनियावी योग्यता व गुणों की नहीं देखते हैं। वे तो हमारे हृदय की निष्कपटता को देखते हैं कि हम वास्तव में उन्हें चाहते हैं अथवा नहीं।

श्रीकृष्ण एवं उनके भक्तों की सेवा में अरूचि होना ही अज्ञान का कारण है। ये अज्ञान हमारे स्वरूप-भ्रम का कारण है तथा स्वरूप-भ्रम भैतिक सामाजिक कामनाओं वासनाओं का कारण है। ये दुनियावी कामनाऐं ही हमारे पापों का कारण होती है तथा पाप हमारे दुखों का कारण है। अतः दुःखों का मूलकारण भगवान श्री कृष्ण की सेवा से विमुखता ही है।